बालमुकुन्द गुप्त (1865-1907) आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के जनक माने जाते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पंरपरा में जिस हिन्दी के मानक स्वरूप का प्रयोग बालमुकुन्द गुप्त और उनके सहयोगियों ने किया, उसी ने आगे चलकर हिन्दी पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उर्दू पत्रकारिता के सर्वप्रथम इतिहासकार बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित हिन्दी समाचार-पत्रों का विस्तृत इतिहास भी पहला प्रयास था। उर्दू तथा फ़ारसी के लेखक और देशभक्त बालमुकुन्द अपने जीवन के आरंभिक चरण में उर्दू के पत्रकार बने, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने *कोहिनूर* के संपादन-काल में हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार का प्रयास किया। वे समाचार-पत्रों को भारत की जनता के समग्र साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उत्थान का साधन बनाना चाहते थे। *भारत मित्र* के संपादक के रूप में उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी निर्भीकता। धारदार लेखनी, दृढ़ता, ओजस्विता, तर्क-प्रियता और विनोदशीलता के समावेश से उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को एक नयी दिशा और दृष्टि दी। वे अपने विचारों तथा भावनाओं को सीधी-सरल, चुटिल और विनोदपूर्ण भाषा में इस तरह व्यक्त करते थे कि पाठकगण उनका न केवल आनन्द लेते थे बल्कि उनसे प्रेरणाएँ भी ग्रहण करते थे। उन्होंने लार्ड कर्ज़न जैसे तत्कालीन वाइसरायों के कार्यक़लापों को 'शिवशम्भू' उपनाम से 'शिवशम्भू के चिट्ठे' में व्यंग्यात्मक एवं रोचक शैली में इस तरह प्रस्तुत किया कि वे आज एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ माने जाते हैं और व्यंग्य-विनोद तथा हास्य के प्रतिमान हैं।

इस विनिबंध के रचयिता **श्री मदन गोपाल** (जन्म 1919) का साहित्यकारों की जीवनियों के लेखन के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। आप पिछले चालीस वर्षों से निरंतर अंग्रेज़ी के माध्यम से हिन्दी तथा उर्दू साहित्यकारों पर लिखने वाले यशस्वी साहित्यकार हैं। आप 'दैनिक ट्रिब्यून' के सम्पादक रह चुके हैं। आपकी अब तक पैंतीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस विनिबंध में आपने बालमुकुन्द गुप्त के महत्त्वपूर्ण योगदान का मूल्यांकन किया है। हिन्दी पत्रकारिता के विकास एवं उत्कर्ष में रुचि रखनेवाले पाठकों के लिए यह विनिबंध विशेष उपयोगी है।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

97

साहित्य

बालमुकुन्द गुप्त

मदन गोपाल

भारतीय साहित्य के निर्माता

बालमुकुन्द गुप्त

Balmukund Gupta : Hindi translation by Madan Gopal of his own monograph in English. Sahitya Akademi, New Delhi,

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

© साहित्य अकादेमी

प्रथम संस्करण : 1990

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय

रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नयी दिल्ली 110 001
विक्रय विभाग : 'स्वाति', मन्दिर मार्ग, नयी दिल्ली 110 001

क्षेत्रीय कार्यालय

जीवन तारा बिल्डिंग, चौथा तल, 23 ए/44 एक्स, डायमण्ड हार्बर रोड,
कलकत्ता 700 053
29, एलडाम्स रोड, तेनामपेट, मद्रास 600 018
172, मुम्बई मराठी ग्रन्थ संग्रहालय मार्ग, दादर, बम्बई 400 014

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15-00

मुद्रक

भारती प्रिण्टर्स
दिल्ली 110 032

अनुक्रम

प्रारंभिक काल	7
उर्दू पत्रकार के रूप में	10
जनजागरण	13
तत्कालीन उर्दू एवं हिन्दी समाचार-पत्र	15
हिन्दी बंगबासी	27
भारत मित्र	31
हिन्दी प्रगति-पथ पर	35
भाषा का मानकीकरण	41
समालोचना	47
शिवशम्भू के चिट्ठे	50
टेसू और जोगीडा	64
अंतिम चरण	67
सन्दर्भ ग्रंथ सूची	69
सहयोगी ग्रंथ	71

प्रारंभिक काल

हरियाणा प्रदेश के रोहतक ज़िले में एक क़स्बा झज्जर है, जिसके नवाब अब्दुर्रहमान खान को 1857 में बलवई घोषित कर दिल्ली के लाल क़िले के सामने फाँसी दी गयी थी और झज्जर रियासत को तत्कालीन पंजाब प्रान्त के रोहतक ज़िले की एक तहसील बना दी गयी थी। इसी तहसील के एक छोटे-से गाँव को आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के जन्मदाता के जन्म-स्थान होने का श्रेय प्राप्त है। पत्रकार थे देशभक्त बालमुकुन्द गुप्त जिन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में इतना नाम कमाया कि इन्हें अंग्रेज़ों के भारतीय साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता में स्थित हाईकोर्ट में स्पेशल ज्यूरी मनोनीत किया गया। लार्ड कर्ज़न के 1903 के दिल्ली दरबार में उन्हें इसी तरह निमंत्रित किया गया जैसे अंग्रेज़ी समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों को।

गुप्तजी का जन्म स्थान, गुड़ियानी, दिल्ली से हिसार जाने वाली छोटी रेलवे लाइन पर स्थित जाटुसाना स्टेशन के नज़दीक है। गुप्त के आरंभिक काल में इस गाँव की आबादी थोड़ी ही थी। गाँव में दो प्रमुख जातियों के लोग रहते थे। बहुसंख्यक तो पठान (अफ़ग़ान) थे जो घोड़ों का व्यापार करते थे और अल्प-संख्यक महाजन लोग थे जो वाणिज्य और सूद का धन्धा करते थे। पठान व्यापारी अपने बच्चों को उर्दू और फ़ारसी की शिक्षा के लिए मक़तब भेजते, परन्तु महाजन लोगों में शिक्षा का प्रचार नहीं था। बालमुकुन्द गुप्त गाँव में अपनी जाति के पहले बालक थे जिनकी शिक्षा उर्दू और फ़ारसी में हुई।

गुप्तजी के पूर्वज रोहतक ज़िले के धीगल गाँव से झज्जर आये थे। एक शाखा कोसली जा बसी। फिर आजीविका के लिए इधर-उधर के गाँवों में जा पहुँची। गोवर्धन दास गुडियानी जा बसे। इनके दो पुत्र हुए। एक तो युवावस्था में ही चल बसा। दूसरा पुत्र थे पूरणमल, जिन्होंने पैतृक धन्धा सँभाला। पूरणमल के तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ हुईं। बालमुकुन्द तीनों पुत्रों में सबसे बड़े थे। दस वर्ष की आयु होने पर इन्हें गाँव के मक़तब भेजा गया। उन दिनों की पढ़ाई के बारे में गुप्तजी ने आगे चलकर लिखा :

"सन् 1875 के आख़िर में राकिम स्कूल में दाख़िल हुआ था। उस वक़्त पंजाब के इबतिदाई मदरसे नीम मक़तबों की शकल में थे। उर्दू का क़ायदा मौजूद न था। काग़ज़ों पर 'अलिफ़-बे' लिखकर पढ़ायी जाती थी। तहसील-उल-तालीम नाम की एक किताब उर्दू की पहली किताब और उर्दू के क़ायदे का काम देती थी। उर्दू की पहली, दूसरी और तीसरी किताबें बनी ज़रूर थीं मगर वह सब स्कूलों तक नहीं पहुँच सकी थीं। कुछ दिन बाद उर्दू की पहली और दूसरी किताबें आयीं और तहसील-उल-तालीम से लड़कों का पिंड छुटा। उर्दू की पहली किताब के दो हिस्से थे। पहले हिस्से में उर्दू का क़ायदा था और दूसरे में कुछ लतायफ़। यह लतायफ़ ऐसे मुश्किल थे कि बाज़ तो उनमें से आला जमायतों के लड़कों की समझ में भी मुश्किल से आते थे··· सबसे मुश्किल थी उर्दू की तीसरी किताब जिसे मिडल क्लास के लड़के भी अच्छी तरह नहीं समझ सकते थे···उस वक़्त यह तोते की तरह रट लिए थे। मानी तो बहुत दिनों बाद मालूम हुए।"

बालमुकुन्द गुप्त पढ़ाई में होशियार थे। गुडियानी मदरसे के तत्कालीन हेड मास्टर मुंशी वज़ीर मुहम्मद ख़ाँ ने बतलाया :

"सगर सिनी (बाल्यावस्था) की हालत में बालमुकुन्द मेरे पास पढ़ने लगा। उसी वक़्त से आसारे बुलन्द इक़बाली के नुमायाँ होने लगे। वह तबीयत का ज़की था और उसी वक़्त से गौरों फ़िक्र, सफ़ाई और सुथराई से काम करता था और तबीयत पर रहम और इन्साफ़ बदर्जे कमाल था। तहसील उलूम में बहुत बढ़कर था, कभी फेल न हुआ···जिस वक़्त आख़िर इम्तिहान, जमाअत पंजुम, जो बमुकाम कोसली में हुआ था, लाला बलदेव सहाय, एसिस्टेंट इन्सपेक्टर मुस्तहिन थे, उस ख़ूबी के साथ इम्तिहान में कामयाबी हासिल की कि मुझको भी शाबाशी दिलायी और ख़ुशनूदिए मिजाज़ का परवाना साहिब डिपुटी कमिश्नर बहादुर ज़िला रोहतक से दिलाया और उसके वालिद को बुलाकर लाला बलदेव सहाय ने समझाया कि उसको तहसील उलूम के लिए आगे भेजो। उन्होंने उज्र किया कि हमलोग तिजारत-पेशा हैं, हमको ज़्यादा पढ़ाकर रोज़गार की ज़ीरत नहीं है। उस वक़्त एसिस्टेंट इन्सपेक्टर साहब ने फ़रमाया कि 'सूबा पंजाब में दस हज़ार लड़कों का इम्तिहान अब तक ले चुका हूँ, कोई लड़का इस जहानत और लियाकत का नहीं देखा। अगर आगे तालीम न दिलाओगे तो हवतलफ़ी करोगे।'"

इससे पहले कि पूरणमल अपने लड़के के भविष्य के बारे में कुछ सोचते, वे चौंतीस वर्ष की आयु में चल बसे। यही नहीं, उनके निधन से पूरणमल के पिता

को ऐसा धक्का लगा कि एक सप्ताह में उनका भी स्वर्गवास हो गया। तब परिवार में सबसे बड़े चौदहवर्षीय बालमुकुन्द को अपने पैतृक व्यवसाय के हिसाब-किताब को समझने, बक़ाया वसूल करने और लेन-देन के झगड़े निपटाने के काम में जुट जाना पड़ा। अगले ही वर्ष सन् 1880 में उनका विवाह भी कर दिया गया। वधू अनार देवी रेवाड़ी के एक व्यापारी की पुत्री थी। अब बालमुकुन्द को घर-गृहस्थी और छोटे भाइयों और बहनों की देखरेख भी करनी पड़ी। शिक्षा के स्वप्न हवा हुए। जब पाँच वर्षों की अवधि में उनके भाई काम सँभालने की स्थिति में हुए तब बालमुकुन्द निर्णय कर सके कि आगे पढ़ाई की जाए। उन्होंने घर बैठकर स्वयं अध्ययन किया और 1886 में दिल्ली जाकर वहाँ से मिडल की परीक्षा पास की।

उर्दू पत्रकार के रूप में

बालमुकुन्द गुप्त ने उर्दू और फ़ारसी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। उनके शिक्षक मुंशी वजीर मुहम्मद खान तथा मुंशी बरकत अली खान ने उन्हें पढ़ने के अलावा लिखने के लिए भी प्रोत्साहन दिया। झज्जर में नवाबी ज़माने से मुशायरों की प्रथा चली आ रही थी। 'शाद' (आनन्द) के उपनाम से लिखी बालमुकुन्द की नज़में भी इन मुशायरों में पढ़ी जातीं और उनकी वाहवाही होती। उस समय एक पद्यपरक मासिक पत्र 'गुलदस्तों' का रिवाज़-सा था, जिनमें बालमुकुन्द की कविताएँ भी छपती थीं। इनके बारे में गुप्तजी ने आगे चलकर स्वयं लिखा कि इन गुलदस्तों को बहुधा वे ही लोग निकालते थे जो इतर बेचते थे।

गुलदस्तों का अपना महत्त्व तो था, परन्तु उन दिनों का सबसे अधिक प्रतिष्ठित पत्र था लखनऊ का 'अवध पंच', जिसका सम्पादन मुंशी सज्जाद हुसैन करते थे। 'अवध पंच' को अच्छे-अच्छे लेखक मिले थे। बड़े-बड़े नामी आदमी उसमें लिखना अपना गौरव समझते थे। स्वर्गीय पंडित रतननाथ सरशार भी आदि में 'अवध पंच' में ही लिखा करते थे। इस पत्र की कितनी ही विशेषताएँ थीं। वह इस देश के त्यौहारों और उत्सवों को कभी नहीं भूलता था। त्यौहार चाहे हिन्दुओं के हों चाहे मुसलमानों के और चाहे ईसाइयों के। सब पर वह कुछ-न-कुछ लिखता था। मुंशी सज्जाद हुसैन हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक दृष्टि से देखते थे। अपने अखबार द्वारा वह दोनों में मेल रखने की चेष्टा करते थे। इसी पत्र के एक लेखक थे सितम ज़रीफ़। उनके लेख पढ़ते समय आँतों में बल पड़ जाते थे। वह प्रायः लखनऊ की बातें लिखते थे। नवाब लोग बटेर कैसे लड़ाते हैं, मुक़दमेबाज़ अदालतों में मुक़दमे कैसे लड़ते हैं और किस प्रकार वह अदालती मामलों में पड़कर खराब होते हैं। लखनऊ में नवाबों का क्या ठाटबाट है ! लखनऊ के मेले, ठेलों का क्या रंग ढंग है। यही सब बातें उनके लेखों में होती थीं। इन्हीं मामूली बातों को वह ऐसे ढंग से लिखते कि पढ़नेवाले मोहित हो जाते थे। पर केवल व्यंग्य या हँसी ही उनके लेखों में नहीं होती थी। उनमें मुहावरों का खज़ाना और लालित्य का ढेर होता था। पद्य रचना में गुप्त सितम ज़रीफ़ को अपना उस्ताद मानते थे और उन पर सितम ज़रीफ़ का खूब रंग चढ़ा था। उनकी

कविताएँ और लेख (उपनाम था मि० हिन्दी) 'अवध पंच' में तो प्रकाशित होते ही थे। 'उर्दू-ए-मुअल्ला', 'रहबर' और 'विक्टोरिया गज़ट' में भी छपते थे। उर्दू पत्रकारिता में उनका खासा नाम था। परन्तु केवल एक लेखक के नाते, सम्पादक के नाते नहीं। फिर इन्हें उर्दू पत्रकारिता में जाने का अवसर भी मिला। इसका श्रेय उनके मित्र दीनदयालु शर्मा को जाता है। शर्माजी भी झज्जर के थे। वे गुप्त के समकालीन तो थे ही उनके विशेष मित्र भी थे। वे भी 'खुरसन्द' (आनन्द) के उपनाम से कविताएँ लिखते थे जो झज्जर के मुशायरों में पढ़ी जातीं।

दीनदयालु ने 1885 में मथुरा से 'मथुरा अखबार' का प्रकाशन आरम्भ किया। गुप्तजी भी इसमें लिखने लगे। इस पत्र के बारे में गुप्तजी ने लिखा था : "पत्र बड़े आकार का था। इसमें सबसे पहले ईश्वर की स्तुति हिन्दी में और उसकी नक़ल उर्दू में होती थी। पीछे राजनीति, समाज और धर्म सम्बन्धी लेख होते थे। पत्र राजनीतिक था पर हिन्दू धर्म का भाव उसमें खूब था। इस ढंग का वह एक ही पत्र था।" आगे चलकर दीनदयालु शर्मा लाहौर के 'कोहिनूर' के सम्पादक बने। जब वे उसी पद पर थे, तो 'अखबार-ए-चुनार' के प्रबन्धकों ने शर्माजी से अपने पत्र के लिए एक सम्पादक की नियुक्ति के लिए नाम माँगे। शर्माजी ने गुप्त का नाम सुझाया। यही स्वीकारा गया।

बालमुकुन्द गुप्त ने केवल मिडल पास किया था लेकिन 'अखबार-ए-चुनार' के सम्पादक पद पर हुई नियुक्ति से उनकी प्रतिष्ठा काफ़ी बढ़ गयी थी। मिर्ज़ापुर ज़िला में चुनार से प्रकाशित होनेवाला यह एक जाना-माना पत्र था। सरकारी क्षेत्रों में इसकी बड़ी इज्ज़त थी। बालमुकुन्द ने इसे चार-चाँद लगाये और पत्र चर्चा का विषय और जनता का मुखपत्र बना। गुप्तजी की प्रतिभा की खबर दीनदयालु शर्मा को मिली। वह बहुत प्रसन्न हुए और जब वह 1886 में कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए कलकत्ता जा रहे थे तो चुनार रुके और गुप्तजी को शाबाशी दी।

कलकत्ता के उस कांग्रेस अधिवेशन में शर्माजी द्वारा लिखे गये स्वतंत्रता और क़ानून पर एक आलेख की बड़ी चर्चा हुई। इसी अधिवेशन में दीनदयालु शर्मा और पं. मदनमोहन मालवीय के बीच विचार-विमर्श हुआ। जिसके परिणाम-स्वरूप भारत धर्म महामंडल का गठन हुआ। इसका ध्येय था हिन्दुओं के विभिन्न मतावलंबियों को एक ही मंच पर ऐसे ही इकट्ठा करना; भारत के नाना धर्म नाना जाति के लोगों को कांग्रेस के राजनीतिक प्लेटफ़ार्म पर इकट्ठी करने की तरह। इसके तीन वर्ष पूर्व दयानन्द सरस्वती का निधन हो गया था और इस क्षेत्र में शून्यता-सी आ गयी थी, जिसे दीनदायालु शर्मा ने पूरा किया। शर्माजी भारत धर्म महामंडल के लिए पूरा समय देने को तैयार थे। महामंडल का पहला अधिवेशन 1887 में हरिद्वार में हुआ। इसमें भाग लेने के लिए विभिन्न प्रान्तों के

प्रतिनिधि इकट्ठे हुए। इनमें एक थे कर्नल ऑलकाट जिन्होंने थियॉसोफ़िकल सोसाइटी की नींव डाली थी। बालमुकुन्द गुप्त ने भी इस अधिवेशन में भाग लिया। वहीं उनकी भेंट 'कोहिनूर' के स्वामी मुंशी हरसुखराय से हुई। मुंशीजी उनसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने दीनदयालु शर्मा से कहा कि वह गुप्तजी को 'कोहिनूर' का कार्यभार सँभालने पर राजी करें।

जनजागरण

बालमुकुन्द गुप्त की बाल्यावस्था का समय वही था जब 1857 के स्वाधीनता संग्राम के बाद जनता में नयी आशाएँ जागृत हो रही थीं। झज्जर के नवाब को फाँसी दिये जाने के बाद उस क्षेत्र में देशभक्ति का बीजारोपण हो रहा था। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक विधेयक पास कर ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकारों को स्वयं लेकर सारी सत्ता सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट को दे दी थी जिसका उत्तरदायित्व ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्य होने के नाते पार्लियामेंट को ही जाता था। नवम्बर 1858 में लार्ड कैनिंग गवर्नर जनरल बनकर भारत आये और उन्होंने महारानी विक्टोरिया द्वारा नयी नीति की घोषणा की :

> "हमारे भारतीय क्षेत्र की जनता से हमारा नाता वैसा ही है और उनके प्रति हमारी भावनाएँ भी वैसी ही हैं जैसी साम्राज्य के अन्य देशों की जनता से। उनकी समृद्धि में हमारी शक्ति है, उनकी सन्तुष्टि में हमारी सुरक्षा और उनकी कृतज्ञता में ही हमारी उपलब्धि।"

घोषणा-पत्र ने ज़ख़्मों पर मरहम का काम किया। प्रत्येक भारतीय नेता महारानी विक्टोरिया के प्रति राजभक्ति के प्रदर्शन में व्यस्त था। भारतीयों को आई. सी. एस. में भी भर्ती किया जाने लगा। दो दशकों में स्थिति इतनी बदल चुकी थी कि वायसराय और गवर्नर-जनरल लार्ड लिटन ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि विक्टोरिया के घोषणा-पत्र में किये गये आश्वासन "कभी पूरे नहीं हो सकते और न ही पूरे होंगे।" वास्तव में गुलामी की ज़ंजीरें और कड़ी कर दी गयीं। इस कार्यक्रम में दो सहायक घटनाएँ भी थीं—एक तो ब्रिटेन से भारत तक सीधे तार की व्यवस्था और दूसरी स्वेज़ नहर के माध्यम से सीधे संचार में तेजी। इसी स्थिति के आधार पर प्रधानमंत्री डिज़रेली ने विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी होने की घोषणा की और फिर 1877 में दिल्ली दरबार की व्यवस्था की जहाँ राजाओं-महाराजाओं और नवाबों को बुलाकर राजभक्ति का प्रदर्शन हुआ। इसी राजदरबार की प्रतिक्रिया के रूप में यह भावनाएँ भी जागृत हुईं कि जब राजे-महाराजे इत्यादि राजभक्ति का प्रदर्शन कर सकते हैं तब जनता के प्रतिनिधि

इकट्ठे होकर देशभक्ति का प्रदर्शन क्यों नहीं कर सकते ताकि संविधानिक तरीक़ों से सरकार की तानाशाही के विरुद्ध आवाज़ उठायी जा सके। दादा भाई नौरोजी, प्रो. भंडारकर, महादेव गोविन्द रानाडे सरीखे नेताओं ने और कितनी ही संस्थाओं ने जनजागरण में योगदान तो दिया ही समाचारपत्रों ने भी अच्छी भूमिका निभायी। मुसलमानों में उनके नेता सर सैयद अहमद खान ने पश्चिमी ढंग की शिक्षा का ज़ोरदार समर्थन किया। उनका मत था यदि भारतीयों के अपने प्रतिनिधि काउंसिलों में उपस्थित होते तो जनता के दुख-दर्द का ब्यौरा अधिकारियों तक पहुँचता। सर सैयद राजभक्त थे और सरकारी सेवा में वह तत्कालीन भारत में उच्चतम स्थान पर जा पहुँचे थे, और उन्हें गवर्नर जनरल की काउंसल की सदस्यता प्राप्त हुई थी।

जनजागरण तथा धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में नयी मान्यताओं और नये मूल्यों ने देशवासियों में देशभक्ति और स्वावलम्बन की भावना जागृत कर दी थी। नयी आशाएँ उभरी थीं और नयी आकांक्षाएँ भी। इस कार्य में समाचारपत्रों का अपना महत्त्व था।

बालमुकुन्द गुप्त जैसे सम्पादक देशोत्थान के कार्य में सक्रिय थे। 'अखबार-ए-चुनार' में प्रकाशित लेखों से ब्रिटिश सरकार के गुण गाने वाले प्रबन्धक कैसे खुश हो सकते थे। कहासुनी हुई और बालमुकुन्द उस समाचार-पत्र को छोड़कर गुडियानी लौट गये। तभी दीनदयालु शर्मा ने गुप्तजी को 'कोहिनूर' का सम्पादक नियुक्त करवा दिया।

तत्कालीन उर्दू एवं हिन्दी समाचार-पत्र

बालमुकुन्द गुप्त उर्दू पत्रकारिता के बारे में विस्तार से लिखने वाले सर्वप्रथम इतिहासकार थे। 'भारत मित्र' में हिन्दी समाचार-पत्रों के इतिहास के बारे में लिखने से पूर्व उन्होंने उसी पत्र में उर्दू समाचार-पत्रों का इतिहास इसलिए लिखा कि उर्दू के समाचार-पत्र हिन्दी से कहीं पहले प्रकाशित हुए थे। इसके अलावा उनका यह भी मत था कि जिस भाषा को लोग उर्दू कहते हैं वह हिन्दी से अलग नहीं है। जब इसे फ़ारसी अक्षरों में लिखा जाता है तो यह उर्दू हो जाती है और जब इसे देवनागरी अक्षरों में लिखा जाता है तो इसे हिन्दी कहते हैं।

गुप्तजी के अनुसार उर्दू का प्रथम समाचार-पत्र था दिल्ली का 'उर्दू अखबार' जिसका प्रकाशन 1833 में आरम्भ हुआ। वैसे कलकत्ता से 1822 में निकले 'जामे जहाननुमा' को उर्दू का पहला समाचार-पत्र माना जाता है। परन्तु प्रथम चरण का सबसे अधिक प्रभावशाली और टकसाली अखबार था लाहौर का 'कोहिनूर'। दूसरे चरण का लाहौर का 'अखबार-ए-आज़म' और तीसरे चरण का लाहौर का 'पैसा अखबार' था। क्योंकि गुप्तजी के परम मित्र दीनदयालु शर्मा और स्वयं गुप्तजी ने 'कोहिनूर' का सम्पादन किया था यह आवश्यक जान पड़ता है कि इस समाचार-पत्र के बारे में कुछ लिखा जाये। मुंशी हरसुखराय ने इसका प्रकाशन 1850 में शुरू किया था। यह समाचार-पत्र एकदम चमक उठा था।

गुप्तजी के कथन के अनुसार इस पत्र को कई रियासतों का संरक्षण प्राप्त था। इसकी नीति किसी भी तरह निश्चित नहीं थी। यह वाद-विवाद से दूर रहता और किसी भी विषय पर ऐसी बात नहीं लिखता जिसकी कड़ी प्रतिक्रिया हो। लेख लम्बे-लम्बे होते थे। सम्पादकीय टिप्पणियाँ और समाचारों के अनुवाद भी विस्तार से लिखे जाते। नीति निर्धारण स्वयं सम्पादक द्वारा होता। इस समाचार-पत्र के सम्पादकीय विभाग में कई मुसलमान थे। सम्पादक हिन्दू भी हो सकता था और मुसलमान भी। इस समाचारपत्र 'कोहिनूर' का विशेष महत्त्व इसलिए भी था कि यहाँ अधिकतर उर्दू पत्रकारों और प्रकाशकों को प्रशिक्षण मिला। बहुत से लोगों ने यहीं प्रशिक्षण पाकर अपने-अपने अखबार निकाले, प्रेस लगाये या प्रकाशन-गृह स्थापित किये। जैसे मुंशी नवल किशोर ने यहाँ काम

सीख कर लखनऊ में अपना प्रेस लगाया और 1858 में 'अवध अखबार' शुरू किया। इन्होंने उर्दू किताबों का एक बड़ा भारी प्रकाशन-गृह भी स्थापित किया। 'अवध अखबार' की नीति एकदम राजभक्ति पूर्ण थी। यह ब्रिटिश शासकों की झोली चुकी भी करता था। इस पत्र में 'पायनियर' तथा अन्य अंग्रेज़ी समाचार-पत्रों के समाचारों और लेखों के अनुवाद प्रकाशित होते थे। अनुवादकों को वेतन तो पर्याप्त मिलता था परन्तु अनुवाद प्रायः शाब्दिक होते थे। कभी-कभी तो अर्थ भी स्पष्ट नहीं होता था। पत्र राजनीति और समाज सुधार से कोसों दूर रहता तो भी अठारह वर्षों तक अर्थात् 1877 तक इस पत्र का वर्चस्व क्योंकि 1877 में मुंशी सज्जाद हुसैन ने 'अवध पंच' निकालना शुरू किया और 'अवध अखबार' को 'बनिया अखबार' का नाम दिया।

जब मुंशी हरसुखराय की ओर से दीनदयालु शर्मा ने बालमुकुन्द गुप्त को 'कोहिनूर' के सम्पादक बनने का निमंत्रण दिया तो गुडियानी में रह रहे बालमुकुन्द ने इस निमंत्रण को स्वीकार कर लिया। उन्हें विश्वास था कि इस कार्य में उन्हें दीनदयालु शर्मा का पूर्ण सहयोग और दिशा निर्देशन भी मिलेगा। गुप्तजी द्वारा 'कोहिनूर' के सम्पादक का पद ग्रहण करने के बाद दीनदयालु शर्मा कई बार लाहौर पधारे। दोनों मित्रों के विचारों में समता थी। हिन्दू-धर्म के प्रचार और हिन्दी को प्रोत्साहन देने के लिए बालमुकुन्द गुप्त ने अपने मित्रों से निवेदन किया कि वह स्वयं तो समाचारपत्र के माध्यम से अपने लक्ष्य को पहुँचने का प्रयास करेंगे परन्तु जिस देश में साक्षरता बहुत कम हो और जहाँ लोग भाषणों से अधिक प्रभावित होते हों वहाँ शर्माजी अपनी वाणी से लोगों के ज्ञान में वृद्धि करें और जागृति लायें।

भाषणों का अपना महत्त्व तो था परन्तु उस समय भाषणों की व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं था। इस ओर जनता की विशेष रुचि भी नहीं थी। एक बार दीनदयालु शर्मा के भाषण की व्यवस्था लाहौर के सनातन धर्म मंदिर में की गयी। ताँगे पर बैठ इसकी घोषणा के हैंडबिल बाँटे गये। बाँटनेवाले थे स्वयं शर्मा जी और गुप्तजी। जब भाषण का निर्धारित समय आ पहुँचा तो मंदिर में केवल दो ही व्यक्ति उपस्थित थे जिन्होंने स्वयं दरी बिछाई। एक थे उस दिन के वक्ता दीनदयालु शर्मा और दूसरे थे श्रोता बालमुकुन्द गुप्त। आहिस्ता-आहिस्ता कुछ अन्य लोग भी आ गये। भाषणों का सिलसिला चलता रहा और कुछ दिनों बाद इनकी बड़ी धूम मच गयी। व्याख्यान-वाचस्पति दीनदयालु इतने लोकप्रिय हो गये कि जब एक महीने बाद वह लाहौर से जाने लगे तो विदाई के लिए एक बड़ी भीड़ उन्हें रेलवे स्टेशन तक छोड़ने के लिए गयी। इस लोकप्रियता में बालमुकुन्द गुप्त के समाचार-पत्र का योगदान भी रहा था।

'कोहिनूर' के सम्पादक होने के नाते बालमुकुन्द ने कई मित्र और हितैषी भी बनाये। इनमें से एक थे, प्रतिष्ठित व्यक्ति शम्स-उल-उलेमा मुहम्मद हुसैन आज़ाद, जिन्होंने उर्दू और फ़ारसी में कई पाठ्य-पुस्तकें लिखीं। यह 'उर्दू अखबार' के संस्थापक मौलवी मुहम्मद अली बाकर के पुत्र थे। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद अंग्रेज़ों ने मौलवी साहब को मार डाला था। पुत्र मुहम्मद हुसैन किसी तरह बच निकला। आगे चलकर यह बहुत विशिष्ट लेखक बना।

इन्हें उर्दू भाषा का सर्वश्रेष्ठ विशेषज्ञ माना गया। ये उस समय 'दीवान-ए-ज़ौक़' के सम्पादन में सक्रिय थे। इसका ज़िक्र भी करते थे। एक दिन कहने लगे :

> "देखो भाई, नाइन्साफ़ कहते हैं कि मैं खुद ग़ज़लें लिखकर उस्ताद के नाम से इनके दीवान में दाखिल करना चाहता हूँ। भला इससे फ़ायदा? अगर उस्ताद के बराबर मैं ग़ज़लें कह सकता तो इनको अपने नाम से क्यों न छपवाता?"

गुप्तजी आज़ाद को मिलने जाते और आज़ाद भी कभी-कभी 'कोहिनूर' प्रेस में जाते थे। उन्होंने 'कोहिनूर' के लिए कुछ किताबों की समीक्षा भी की जो 'दीवान-ए-ज़ौक' में मरणोपरान्त प्रकाशित भी हुई। आज़ाद उम्र में गुप्त से बड़े थे परन्तु वह गुप्तजी की इज्ज़त करते थे।

'कोहिनूर' के सम्पादन की अवधि में गुप्तजी ने हिन्दी के प्रचार में रुचि दिखलायी। राजा लक्ष्मण सिंह को पत्र लिखकर पूछा कि उनके कालिदास के मेघदूत, शकुन्तला और रघुवंश के हिन्दी अनुवाद कहाँ से उपलब्ध होंगे। श्रीधर पाठक को गोल्डस्मिथ के 'डिज़र्टेड विलेज' के हिन्दी रूपान्तर 'ऊजड़ ग्राम' की प्रति के लिए लिखा और बतलाया कि वह उसका मूल्य तो देंगे ही, 'कोहिनूर' में इसके बारे में टिप्पणी भी लिखेंगे। और ऐसा किया भी। श्रीधर पाठक की इस कृति की प्रशंसा कर उन्होंने 'कोहिनूर' के पाठकों से अनुरोध किया कि वे इस अनुवाद को पढ़कर देखें, जिसकी प्रशंसा भारतीय तथा विदेशी विशेषज्ञों ने की थी। गुप्तजी ने लिखा कि श्रीधर पाठक जी ने दिखलाया कि कल्पना का सहारा न लेकर प्रकृति के सौन्दर्य का वास्तविक वर्णन वैसे भी सम्भव है।

गुप्तजी ने कालाकांकर के दैनिक 'हिन्दोस्थान' के बारे में भी एक टिप्पणी लिखी। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि उर्दू के सर्वोत्तम समाचार-पत्र के सम्पादक 1888 के बाद अपने पत्र-व्यवहार के रजिस्टर में हिन्दी का प्रयोग करते थे। वह उर्दू छोड़कर हिन्दी में आने के लिए तैयार थे। इसका अवसर भी आया। मदनमोहन मालवीय से उनकी भेंट भारत धर्ममहामंडल के वृन्दावन अधिवेशन के समय हुई। मालवीय जी तब 'हिन्दोस्थान' का सम्पादन कर रहे थे जो हिन्दी का पहला दैनिक था। मालवीयजी ने बालमुकुन्द गुप्त को 'हिन्दोस्थान' के सम्पादकीय मंडल

में आने का निमंत्रण दिया। मालवीयजी ने उन्हें यह भी बतलाया कि समाचार-पत्र के सम्पादकीय विभाग का पुनर्गठन किया जा रहा था और प्रताप नारायण मिश्र जैसे सुविख्यात व्यक्ति भी वहाँ आ चुके थे। बालमुकुन्द को आरम्भ में हिन्दी सम्पादन कार्य के बारे में थोड़ी झिझक थी चूँकि हिन्दी का अभी विकास ही हो रहा था। परन्तु मालवीयजी ने उन्हें आश्वासन दिया कि कोई विशेष कठिनाई नहीं आयेगी।

'भारत मित्र' में धारावाहिक रूप में हिन्दी के समाचार-पत्रों का इतिहास लगभग 120 पन्नों का था और इसमें समाचार-पत्रों द्वारा हिन्दी भाषा के विकास में योगदान का विवरण है। तत्कालीन समाचार-पत्रों के उद्धरण देकर गुप्तजी ने अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया। उन्होंने समाचारपत्रों के राजनीतिक दृष्टिकोण के बारे में भी अर्थात् क्या वह पत्र राजभक्त था या देशभक्त और सरकार की ओर उसका क्या रवैया था इत्यादि। बालमुकुन्द गुप्त के अनुसार हिन्दी का सर्वप्रथम समाचारपत्र 'बनारस अखबार' था जिसे राजा शिवप्रसाद 'सितारा-ए-हिन्द' ने 1845 में शुरू किया।[1] 'बनारस अखबार' की भाषा क्लिष्ट उर्दू थी परन्तु देवनागरी लिपि में भाषा का रूप भी इतना बनावटी था कि इसके लिए आदर की भावना कभी उत्पन्न नहीं हो सकती थी।

गुप्तजी के अनुसार सही माने में हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र था 1867 में प्रकाशित भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'कवि वचन सुधा'। इसी पत्र ने हिन्दी भाषी लोगों को बतलाया कि अच्छा समाचार-पत्र कैसा होता है और कैसे यह देश के उत्थान में महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है। भारतेन्दु को 'कवि वचन सुधा' ने कई लेखकों को अपने समाचार-पत्र निकालने की प्रेरणा भी दी। कानपुर से प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' निकाला और इलाहाबाद से बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप'। इस दूसरे पत्र ने राजनीतिक पत्रकारिता की नींव डाली। जिन दिनों प्रताप नारायण मिश्र 'हिन्दोस्थान' के सम्पादकीय मंडल में थे उनका सम्पर्क बालमुकुन्द से हुआ। दोनों में मैत्री हुई। मिश्रजी के निधन पर गुप्तजी ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि भी दी। हिन्दी का दूसरा समाचार-पत्र था 'अलमोड़ा अखबार'। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि हिन्दी भाषी क्षेत्र से कोई अच्छा समाचार-पत्र नहीं निकला। गुप्तजी के अनुसार इसका एक कारण यह भी था कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में देवनागरी लिपि का स्थान उर्दू ने ले लिया था।

हिन्दी पत्रकारिता का दूसरा दौर 1877 में शुरू हुआ जब कलकत्ता से कई पत्रों का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसी दौर में लाहौर से 'मित्र विलास' निकला

1. वस्तुतः हिन्दी का सर्वप्रथम समाचार-पत्र कलकत्ता का 'उदंत मार्तण्ड' था जो 1826 में प्रकाशित हुआ।—लेखक

जिसका प्रकाशन उसी प्रेस से हुआ जिसमें उर्दू का 'अखबार-ए-आम' भी प्रकाशित होता था। 'मित्र विलास' जम नहीं पाया इसका कारण उन्होंने यह बताया है :

> "हिन्दी रूपी बीज के लिए पंजाब की भूमि ऊसर ही नहीं, एकदम पत्थर की है। भारतवर्ष के दूसरे प्रान्तों में हिन्दी की बहुत कुछ उन्नति हो जाने पर भी वहाँ कुछ नहीं हुई है। इस समय पंजाब में हिन्दी की तरफ़ से एकदम सफ़ाई है। एक-आध टूटी-फूटी पत्रिका वहाँ से भले ही निकलती हों, बाक़ी उर्दू-ही-उर्दू का राज्य है।"

लगभग इसी समय कलकत्ता से तीन हिन्दी समाचार-पत्र निकले। ये थे 'भारत मित्र', 'सारसुधानिधि' तथा 'उचित वक्ता'। तीनों में सबसे महत्त्वपूर्ण था 'भारत मित्र'। आगे चलकर बालमुकुन्द गुप्त इस पत्र के सर्वेसर्वा बने। इस पत्र के प्रकाशन की प्रेरणा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'सोम प्रकाश' तथा 'सहचर' से मिली। दुर्गाप्रसाद मिश्र के सुझाव पर छोटूलाल मिश्र ने इसे निकाला। शुरू में यह पाक्षिक था। दसवें अंक के बाद यह साप्ताहिक बना। इस पत्र ने कलकत्ता के हिन्दी भाषी निवासियों में लोकप्रियता प्राप्त की। क्योंकि अपनी तरह का यह एकमात्र प्रकाशन था। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद दुर्गाप्रसाद मिश्र और छोटूलाल के बीच मतभेद हो गये और दुर्गाप्रसाद मिश्र ने सदानन्द मिश्र के सहयोग से 'सारसुधानिधि' का प्रकाशन आरम्भ किया। यह साझेदारी भी बहुत दिन नहीं चली और दुर्गाप्रसाद मिश्र ने अपना नया पत्र 'उचित वक्ता' निकाला, जो खूब चला। कहते हैं कि ग्राहक संख्या को बढ़ाने के लिए दुर्गाप्रसाद मिश्र घर-घर जाते। थोड़े ही दिनों में इस पत्र के लगभग दो हज़ार ग्राहक हो गये। यह प्रसार संख्या 'भारत मित्र' तथा किसी भी अन्य समाचार-पत्र की ग्राहक संख्या से अधिक थी। परन्तु 'उचित वक्ता' बहुत दिन नहीं चल पाया। तीनों समाचारपत्रों में से केवल 'भारत मित्र' ही जीवित रह पाया और यह चमका भी।

बालमुकुन्द गुप्त ने अपने एक निबन्ध में साप्ताहिक और दैनिक पत्रों के बारे में लिखा :

> "हमारी समझ में दैनिक और साप्ताहिक पत्र में बड़ा भारी फ़र्क़ है। जिस प्रबन्ध से साप्ताहिक पत्र चल सकता है दैनिक के लिए उससे दसगुना प्रबन्ध दरकार होता है। हिन्दी प्रेसों में अभी उतनी शक्ति कहाँ है? दैनिक पत्र हिन्दी में उसी दिन चल सकेंगे जब उतना प्रबन्ध होगा। अंग्रेज़ी भाषा में दैनिक पत्र चलना जितना कठिन है, हिन्दी भाषा में उससे और भी अधिक कठिन है, क्योंकि अक़बारों को खबर मिलने का द्वार अंग्रेज़ी है। अंग्रेज़ी वाले अंग्रेज़ी पत्रों से आसानी के साथ खबर और लेख नकल कर सकते हैं। तार की खबरें अंग्रेज़ी की अंग्रेज़ी में छाप सकते हैं। अंग्रेज़ी वाले लोग भी आसानी

से मिल सकते हैं, पर हिन्दी में तो अंधेर हो जाता है। बम्बई कांग्रेस के प्रेसीडेंट काटन साहब को भाषण छापते हुए अंग्रेज़ी अख़बारों के सम्पादकों को इतना ही कष्ट हुआ कि उन्होंने एक छपा हुआ काग़ज़ अपने कम्पोज़िटरों के हाथ में दे दिया और उसे कम्पोज़ करके फेंक दिया। पर 'भारत मित्र' में उसका हिन्दी तरजुमा तब छप सका जब दो योग्य पुरुषों ने छः-छः घंटे नित्य बैठकर तीन दिन तक उसका अनुवाद किया। वैसा ही कष्ट और भाषणों के छापने में होता है। फिर भी एक सन्देह बना रहता है कि अनुवादकर्त्ता कहीं कुछ भूल तो नहीं गया। सारांश यह है कि अभी हिन्दी अखबार के दैनिक होने का समय नहीं आया है। दैनिक पत्र पढ़नेवालों के लिए हिन्दी दैनिकों में जब तक ऐसा मसाला न होगा जो अंग्रेज़ी दैनिकों में न मिले, तब तक हिन्दी दैनिकों को कौन पढ़ेगा? क्योंकि हिन्दी दैनिकों को भी अधिक वही लोग पढ़ेंगे जो अंग्रेज़ी दैनिक पत्रों को पढ़ते हैं। अभी हिन्दी का इतना प्रचार भी नहीं हुआ कि दैनिक हिन्दी पत्रों को बहुत ग्राहक मिल सकें और साथ ही हिन्दी दैनिक पत्र उत्तम प्रबन्ध से चलाये भी नहीं गये हैं।"

गुप्तजी की बात में वजन था। वास्तव में गुप्तजी के समय हिन्दी में दो ही दैनिक निकलते थे। इन दोनों में से 'हिन्दोस्थान' ही महत्त्वपूर्ण था और जिससे गुप्तजी का सीधा सम्बन्ध रहा था। आगे चलकर उन्होंने 'हिन्दोस्थान' तथा अपने कालाकांकर निवास के बारे में विस्तार से लिखा।

'हिन्दोस्थान' के संस्थापक राजा रामपाल सिंह (1848-1909) थे। ये उत्तर प्रदेश की प्रतापगढ़ तहसील में कालाकांकर के ताल्लुकेदार थे। कालाकांकर इलाहाबाद से पन्द्रह मील दूर गंगा के किनारे एक अतिसुन्दर रमणीय स्थान है जिसके तीन ओर गंगा बहती है। उन दिनों आबादी लगभग एक हज़ार थी। पढ़े-लिखे लोगों की संख्या बहुत थोड़ी थी। राजा साहब के महल (क़िला) को छोड़कर सारे घर कच्चे थे। अन्य सब बातों को ध्यान में रखते हुए, कालाकांकर अखबार निकालने के लिए उपयुक्त स्थान नहीं था। परन्तु राजा रामपाल सिंह को अपना यह स्थान प्रिय था और उन्होंने यहाँ तारघर का प्रबन्ध भी करवा लिया। बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे। उन्होंने हिन्दी सीखी, अंग्रेज़ी और संस्कृत सीखी। बहुत महत्त्वाकांक्षी थे। अठारह वर्ष की आयु में ऑनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। सपत्नीक इंगलैंड गये। वहाँ उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। फिर एक अंग्रेज़ी महिला से विवाह किया। दो वर्ष बाद भारत लौटे। फिर इंगलैंड गये वहीं, अगस्त 1883 में उन्होंने 'हिन्दोस्थान' का प्रकाशन शुरू किया जो पहले मासिक और फिर साप्ताहिक बना। यह अंग्रेज़ी और हिन्दी में था। कुछ समय उर्दू संस्करण भी निकाला। हिन्दी

और उर्दू के लेख राजा साहब स्वयं लिखते थे। अंग्रेज़ी में लेखों के लिए एक अंग्रेज़ जॉर्ज टेम्पल्स सम्पादक रख छोड़ा था। दो वर्ष बाद राजा रामपाल सिंह ने भारत लौटकर कालाकांकर से 'हिन्दोस्थान' निकाला। यह हिन्दी का पहला दैनिक था। उन्होंने अंग्रेज़ी पत्र भी निकाला जिसका नाम था 'इंडियन यूनियन'। यह बहुत दिन नहीं चला और इसका स्थान 'हिन्दोस्थान' (अंग्रेज़ी) ने लिया। दैनिक 'हिन्दोस्थान' का कालाकांकर में कोई विशेष दफ़्तर नहीं था। जिस प्रेस में यह छपता था वहाँ बैठने की जगह भी नहीं थी। सम्पादक मंडल के सदस्य केवल प्रूफ पढ़ने वहाँ जाते। लेखन कार्य अपने निवास स्थान पर ही करते। सम्पादक मदनमोहन मालवीय स्वयं अपने घर के बाहर अहाते में बैठकर लिखते। वहीं सम्पादक मंडल के अन्य सदस्य आ जाते। दैनिक 'हिन्दोस्थान' की प्रसार संख्या अधिक नहीं थी। कुल मिलाकर यह घाटे का सौदा था। परन्तु राजा रामपाल सिंह इस घाटे के भार को सहर्ष सह रहे थे। उन्होंने बहुत सारे विद्वानों को अपने पास बुला लिया था। इनमें से एक थे अमृतलाल चक्रवर्ती, जिनकी हिन्दी सेवा के लिए उन्हें एक बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष भी नियुक्त किया गया।

एक अन्य विद्वान थे प्रताप नारायण मिश्र (1856-1894), जो इतने सुयोग्य थे कि कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार एकमात्र यही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उत्तराधिकारी बनने की योग्यता रखते थे। बाल्यकाल से ही इनका रुझान कविता लेखन की ओर था। 'कविवचन सुधा' इत्यादि पत्रिकाओं में इनकी कविताएँ प्रकाशित होती थीं। जैसाकि बताया गया, कुछ मित्रों के सहयोग से इन्होंने 1883 में कानपुर से 'ब्राह्मण' का प्रकाशन आरम्भ किया था। इसमें ज्ञानवर्धक और हास्य-विनोद प्रधान लेख छापे जाते। मिश्रजी की जनता की कठिनाइयों और समस्याओं के प्रति सहानुभूति थी, ये सामाजिक तथा राजनीतिक और सामयिक विषयों पर जोरदार लेख और कविताएँ खिलते थे और नाटक भी। इनकी कृतियों में हास्य-रस की प्रधानता रही। एक और विशेषता है: उन्नाव क्षेत्र की लोकोक्तियों और मुहावरों का यथाशक्य प्रयोग। ये उर्दू और फ़ारसी में भी लेख लिखते थे। कुछ तो दीनदयालु शर्मा के 'भारत प्रताप' में प्रकाशित होते। वह 'हिन्दोस्थान' में भी कविताएँ लिखते। बालमुकुन्द गुप्त इनका बड़ा आदर करते थे। इन्हीं से प्रेरणा लेकर उन्होंने 'भैंस का स्वर्ग' लिखी।

मदनमोहन मालवीय, अमृतलाल चक्रवर्ती, प्रताप नारायण मिश्र के अलावा 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक मंडल में कई अन्य विशिष्ट व्यक्ति भी थे। बालमुकुन्द गुप्त, शशिभूषण चटर्जी, शीतलाप्रसाद उपाध्याय, रामलाल मिश्र, गुरुदत्त शुक्ल, गोपाल राम गहमरी, राधाचरण चौबे, गुलाबचन्द चौबे। कुछ लोग इन्हें 'नवरत्न के नाम से सम्बोधित करते हैं। श्रीधर पाठक, जिनका सम्बन्ध बालमुकुन्द से 'कोहिनूर' के समय स्थापित हुआ था, वह भी 'हिन्दोस्थान' में लिखने लगे। इसी

प्रकार महावीर प्रसाद द्विवेदी भी इसके लेखकों में एक थे।

'हिन्दोस्थान' के सम्पादकीय मंडल के कार्य में बालमुकुन्द गुप्त का योगदान उनके जीवन की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। इस मंडल के कुछ सदस्य बंगाल से आये थे। कुछ बिहार से और कुछ मध्य भारत से। कुछ लोग आधुनिक उत्तर प्रदेश के क्षेत्र के थे। बालमुकुन्द गुप्त हरियाणा के थे। उन्होंने बाङ्ला सीखी और संस्कृत का ज्ञान भी प्राप्त किया। सम्पादक मंडल के इन सब सदस्यों में आपसी मेलजोल के परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा का एक नया रूप उभरा। 'हिन्दोस्थान' में कई वाद-विवाद भी उठे। एक खड़ी बोली तथा ब्रजभाषा के बारे में था। सम्पादक मंडल के कुछ सदस्यों का झुकाव ब्रजभाषा की ओर था तो कुछ अन्य का खड़ी बोली के पक्ष में। वाद-विवाद से मनमुटाव नहीं था। मैत्री सम्बन्ध बने रहे।

'हिन्दोस्थान' में हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता के अतिरिक्त विविध विषयों पर भी लेख प्रकाशित होते। जैसे देवनागरी लिपि का अदालतों में प्रयोग, विधवा विवाह, गोरक्षा इत्यादि। कुछ लेखों की प्रतिक्रिया अन्य समाचार-पत्रों द्वारा भी हुई। राजा रामपाल सिंह की आलोचना भी हुई। 'पीयूष प्रवाह' में अम्बिका प्रसाद व्यास ने 'सुकवि' के उपनाम से राजा साहब का मज़ाक उड़ाया। राजा साहब को इसकी सूचना मिली। उन्होंने चाहा कि कोई इनकी ओर से उत्तर दे। बालमुकुन्द उनसे सहमत थे और 'मैं सुकवि हूँ' शीर्षक से एक ज़ोरदार लेख लिखा। यह एक असाधारण बात थी क्योंकि गुप्तजी किसी अन्य के कहने पर प्रशंसा या निन्दा के लेख कभी नहीं लिखते थे।

उन्हीं दिनों गुप्तजी लाहौर के 'कोहिनूर', लखनऊ के 'हिन्दुस्तानी' 'शम्स-उल-अख़बार' जालंधर के 'सद्धर्म प्रचारक' इत्यादि का अध्ययन तो करते ही थे, 'पायनीयर', 'सिविल एंड मिलिटरी गज़ट' और 'मार्निंग पोस्ट' भी पढ़ते। समाचारों के लिए ही नहीं, उनकी सम्पादकीय टिप्पणियों के लिए भी। उनके सहयोगी गोपालराम गहमरी ने लिखा है कि गुप्तजी का अंग्रेजी-ज्ञान तो बहुत अधिक नहीं था परन्तु अंग्रेजी अख़बारों को देखकर उनका स्वाद ले लेने की योग्यता उनमें काफ़ी थी। किसी दूसरी भाषा की टिप्पणियों से केवल ठोस तथ्य ग्रहण कर वह अपनी ओर से मौलिक की तरह के लेख लिखा करते। किसी को लकुटिया टेक कर चलना अर्थात् शब्दानुवाद करना, उनको नहीं भाता। स्वयं लिखने के बजाए वे 'डिक्टेट' कराना अधिक पसन्द करते थे।

बालमुकुन्द गुप्त सनातनधर्म के अनुयायी थे, वैष्णव और शाकाहारी। सबेरे नहा-धोकर माथे पर तिलक अवश्य लगाते। ठाटबाट और आडम्बर के विरुद्ध थे। क्योंकि राजारामपाल सिंह का रहन-सहन और भोजन इत्यादि यूरोप के लोगों जैसा था और उस क्षेत्र में केवल उन्हीं के घर पर शराब का दौर चलता था।

बालमुकुन्द उनसे थोड़ा दूर ही रहने का प्रयत्न करते। वह राजा साहब के घर तब ही जाते जब उन्हें बुलवाया जाता है। और उन्हें इस बात को स्वीकार करने में झिझक नहीं थी कि जो समय वह राजा साहब के यहाँ बिताते वह व्यर्थ और बेकार था।

जब मदनमोहन मालवीय छुट्टी लेकर वकालत की परीक्षा देने गये तब सम्पादकीय उत्तरदायित्व बालमुकुन्द गुप्त को सौंपा गया। यह उनकी योग्यता का संकेत था। प्रताप नारायण मिश्र और शशि भूषण चटर्जी अब गुप्तजी के निवास स्थान पर पहुँचकर विचार-विमर्श करते, या सब लोग उनसे बारादरी के ऊपरवाले कमरे में भेंट करते।

बालमुकुन्द गुप्त देशभक्त थे। राजा रामपाल सिंह एक ताल्लुकेदार थे और सरकार के ख़ैर-ख़्वाह। दोनों में मतभेद होना स्वाभाविक था। उधर बालमुकुन्द द्वारा लिखे गये देशभक्तीय सम्पादकीय ब्रिटिश सरकार को खटकते। अप्रैल-मई 1890 के 'हिन्दोस्थान' के तीन अंकों में बालमुकुन्द द्वारा लिखित 'सर सैयद अहमद का बुढ़ापा' छपा। इसमें कोलविन द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस की आलोचना का सर सैयद अहमद खान द्वारा समर्थन का जवाब दिया गया था। बालमुकुन्द ने सर सैयद के दृष्टिकोण में परिवर्तन पर दुख प्रकट किया।

एक उद्धरण :

> बोलो तो बुड्ढे बाबा, क्या उस सनेह का हुआ निचोड़
> भूल गये पंजाब यात्रा में तुम आँख रहे थे फोड़,
> हिन्दू और मुसलमानों को एक हिस्सा बतलाते थे,
> आँख फोड़ने को अपने झटपट प्रस्तुत हो जाते थे।

बालमुकुन्द गुप्त ने सर सैयद अहमद (1817-98) के वंश के बारे में तथा जामा मस्जिद के निकट रहने की उनकी समृद्धि और उनके यश की चर्चा की और उन्हें इस बात की याद दिलायी कि मुहम्मद गज़नी जैसे बादशाह भी एक दिन इस संसार से खाली हाथ चले गये। उन्होंने हिन्दुस्तान के मुसलमानों द्वारा सैयद अहमद के पुत्र को अलीगढ़ विश्वविद्यालय के 'ट्रस्टीज़' में नियुक्ति के सुझाव का विरोध तथा सैयद अहमद की तथाकथित सेवाओं का सही मूल्यांकन भी किया।

अधिकारी वर्ग द्वारा किसानों के शोषण का चित्रण कर बालमुकुन्द ने दुःख व्यक्त किया :

> जिनके कारण सब सुख पावैं जिनका बोया सब जन खायँ
> हाय हाय उनके बालक नित भूखों के मारे चिल्लायँ
> हाय जो सबको गेहूँ दें, वह ज्वार बाजरा जाते हैं।
> वह भी जब नहिं मिलता तब वृक्षों की छाल खाते हैं।

बालमुकुन्द ने बूढ़े बाबा को याद कराया कि अंग्रेज अधिकारी शिमला की ठंड में चैन उड़ाते हैं और भारत की सीमा की रक्षा की बात करते हैं :

बाबा, उनसे कह दो जो सीमा की रक्षा करते हैं
लोहे की सीमा पर लेने की चिन्ता में मरते हैं।
अच्छे-अच्छे कपड़ों से तुम अपने अंग सजाते हो
इससे क्या हो सकता है, जब नीचे कोढ़ छिपाते हो।
प्रजा तुम्हारी दीन दुखी है, रक्षा किसकी करते हो
इससे क्या कुछ भी होना है नाहक पच पच मरते हो।

चाटुकरिने बाबा तुमको, औंधी बुद्धि सिखाई है,
स्वार्थान्धता पकड़ तुम्हें उल्टे रस्ते पर लाई है।

अहा ! तुम्हारी आँखों पर तो गहरी चरबी छाई है
मुसलमान लोगों को भी क्यों देता नहीं दिखाई है।

टूटी लोगों के दिल पर तुमने जो स्वांग रचाया था
डुयल युद्ध में मर रहने का भारी भय दिखलाया था।

× × ×

धन बल वयस बड़ाई गौरव तुमने सब कुछ पाया है
पर अब उसका शेष हो गया अन्त समय बस आया है।
एक और भी आशा शेष रही है शायद पाओगे
मरते मरते जी. सी. आई. भी तुम बन जाओगे।
पर यह भी सोचो इसको पाकर कितने दिन जीओगे
अमृतरूप यह विष है कैसा समझ के इसको पीओगे।
दो ही चार वर्ष में तुमको पृथ्वी से उठ जाना है,
जिस घमण्ड में फूले हो उसका भी ठौर ठिकाना है।

कभी कभी तो ध्यान सिमट कर इन बातों से लड़ता है
बहुत सोच सोच के अन्त में ऐसा कहना पड़ता है।
बहुत जी चुके बूढ़े बाबा, चलिये मौत बुलाती है
छोड़ सोच मौत से मिलो, जो सबका सोच मिटाती है।

ऐसी कविताओं को पढ़कर सर सैयद अहमद तथा उनके अंग्रेजी संरक्षकों को रोष होता। अधिकारी वर्ग ने राजा रामपाल सिंह से शिकायत की। राजा साहब उन दिनों विलायत जाने की तैयारी कर रहे हैं। बालमुकुन्द गुप्त छुट्टी लेकर गुडयानी गये हुए थे। आने में थोड़ी देर हुई। इसी की आड़ में राजा रामपाल सिंह ने

बालमुकुन्द को नौकरी से निकाल दिया। 1 फरवरी, 1891 को एक टिप्पणी लिखी :

"मुंशीजी को आज आना चाहिए था। सो अपने नियत समय पर नहीं आये, इसलिए हमारे चले जाने पर उनका लेख जाने योग्य न होगा, कारण गवर्नमेंट के विरुद्ध बहुत कड़ा लिखते हैं, अतएव इस स्थान के योग्य नहीं हैं।"

अब अखबार पर सम्पादक का जो नाम छपा वह था स्वयं राजा रामपाल सिंह का।

बालमुकुन्द को नौकरी से निकाले जाने पर मदनमोहन मालवीय को भी दुख हुआ। उन्होंने पत्र में लिखा :

"आपके दो तारीख के दो पोस्टकार्ड पहुँचे। दूसरे को पढ़कर अत्यन्त दुःख हुआ। राजा साहब ने क्या समझकर आपको 'डिसमिस' किया है, वे ही जानते हैं। अथवा जो कालाकांकर में हैं वे जानतें हों। किन्तु उन्होंने बुद्धिमानी की बात नहीं की। 'हिन्दोस्थान' के लिए जो आप करते थे, वह दूसरा इतने अल्प वेतन में संतोष करनेवाला पुरुष कदापि नहीं कर सकेगा। अस्तु ! इच्छा उनकी। आप कालाकांकर जाकर अपने शेष वेतन आदि ले आइये और वहाँ से लौटकर कृपाकर इधर दो-एक दिन को चले आइयेगा। ईश्वर चाहेगा तो शीघ्र आपके कोई अधिक हितकारी काम हाथ आ जायेगा।"

श्रीधर पाठक ने लिखा :

"जो 'हिन्दोस्थान' को आपके वियोग से हानि पहुँची है उसका भरना अति दुःसाध्य है। आधा दर्जन बी.ए. या एम.ए. मिलकर इस पत्र को उसकी आधी रौनक़ नहीं दे सकते जो आप अकेले दे रहे थे। आपका यहाँ से जाना मुझको तो बन्धु-विच्छेद के समान असह्य हुआ है।"

गुडियानी से मालवीय जी के साथ हुए पत्र-व्यवहार से लगता है कि बालमुकुन्द गुप्त पत्रकारिता के क्षेत्र में सक्रिय थे। उन्होंने रोहतक के अंग्रेज़ डिप्टी कमिश्नर द्वारा दमन की नीति के बारे में मालवीय जी को लिखा। मालवीय जी ने इस रिपोर्ट को 'अमृत बाज़ार पत्रिका' के सम्पादक मोतीलाल घोष को भेज दिया। मोतीलाल घोष ने बालमुकुन्द को स्वयं एक पत्र लिखा :

" 'खैरख़त' के लेख का अनुवाद भेज रहा हूँ। इसमें देखेंगे कि असली बातें किस तरह विकृत रूप में उपस्थित की गयी हैं। अतः आपके लिए चिंतित होने का कारण नहीं है। पत्र के सम्पादक को लिखिए कि आपने सिर्फ़ वास्तविक बातों को ही ग़लत रूप में पेश नहीं किया है बल्कि कमिश्नर को

प्रभावित करने के लिए हिन्दुओं को अपमानित भी किया है। इसलिए आपको माफ़ी माँगनी चाहिए। यह भी लिखिये कि पत्रिका के संवाददाता ने यह कभी नहीं कहा है कि हिन्दुओं को गोमांस खाने के लिए बाध्य किया गया। तुरन्त पत्र लिखने में न चूकियेगा। आशा है कि आपको मेरा तार मिला होगा।"

शीतला प्रसाद उपाध्याय ने बालमुकुन्द को लिखा :

"मुझको (आपके बर्खास्त किये जाने पर) अत्यन्त खेद है। एक तो कुछ काल के लिए आपके जाने ही से उदास था अब सदैव के लिए जुदा होने से और अधिक रंज है। मैंने अमृत बाज़ार पत्रिका को लिख दिया है।"

"मालवीयजी ने पूछा : आपको कोई ऐसा कार्य जिसमें अधिक घूमना पड़े, करना कैसा प्रिय होगा? यदि (अमृत बाज़ार) पत्रिकावाले आपको कुछ मासिक कर दें और घूमने का खर्च दें, तो उनका कार्य, जो अधिक अंश में आपका, हमारा देश का, कार्य है, आपको स्वीकार्य होगा? मुझसे उनसे कुछ इस प्रकार की बातचीत नहीं आयी। केवल उन्होंने एक बार अंग्रेज़ी 'हिन्दुस्तान' के निकलने पर मुझसे पूछा था कि क्या बालमुकुन्द का कार्य अब 'हिन्दोस्थान' आफ़िस में न रहेगा—उसको आपकी तबियत के हिन्दोस्थानी सज्जन की आवश्यकता मालूम देती है। यदि आपको पसन्द हो तो लिखिये कि आप किस वेतन पर और किन शर्तों पर उनका घूमता 'कारेस्पांडेंट' होना स्वीकार करेंगे। आपका पत्र आने पर मैं साफ़-साफ़ बातचीत करूँगा। कार्य वह ऐसा ही चाहेंगे कि जैसा रोहतक में जाकर वहाँ उचित कार्रवाई करना—गोचारन विषय में—देशी राज्यों में जाकर वहाँ ठीक-ठीक समाचार देना इत्यादि। कृपाकर उत्तर शीघ्र लिखियेगा।"

जिस समय यह पत्र आया उस समय बालमुकुन्द गुप्त गुडियानी में दीनदयालु शर्मा के पत्र 'भारत प्रताप' का सम्पादन कार्य कर रहे थे। राजा राममोहन राय की बाङ्ला भाषा में, लिखी जीवनी उर्दू में अनुवाद कर रहे थे तथा अंग्रेज़ी भी सीख रहे थे। अंग्रेज़ी के अध्ययन में श्रीधर पाठक उनकी सहायता कर रहे थे। वह पुस्तकों का सुझाव देते और गुप्त द्वारा अभ्यास की कापियों में शुद्धियाँ करते और ठीक उच्चारण का संकेत भी देते। स्वयं गुप्तजी पाठक जी की उर्दू सीखने में सहायता करते।

हिन्दी बंगबासी

बालमुकुन्द गुप्त का पत्र-व्यवहार 'अमृतबाज़ार पत्रिका' के संस्थापक मोतीलाल घोष से चल रहा था, परन्तु उन्हें बुलावा पत्रिका से नहीं, एक नये समाचार-पत्र से आया। इस नये पत्र के संस्थापक थे योगेशचन्द्र बसु। यह पच्चीस वर्ष की आयु में खाली हाथ वर्धमान से कलकत्ता आये थे। लार्ड रिपन ने प्रेस एक्ट में ढील देकर तीन तोले से कम वज़न के समाचार-पत्रों के लिए डाकदर में कटौती की थी। 1880 में बसु ने स्थिति का लाभ उठाकर बाङ्ला में 'बंगबासी' निकाला। मूल्य था दो रुपये प्रति वर्ष। पत्र की छपाई आकर्षक थी और पाठ्य-सामग्री भी अच्छी थी। पत्र चल निकला। इसकी लोकप्रियता को देखकर बसु ने 1890 में 'हिन्दी बंगबासी' निकालने का फ़ैसला किया। अमृतलाल चक्रवर्ती को 'भारत मित्र' से बुलाया। इन्हें 'हिन्दोस्थान' का भी अनुभव था। इन्हीं के सम्पादन में 'हिन्दी बंगबासी' निकला। चार पन्ने का साप्ताहिक था। हिन्दी में ऐसा पत्र एक नया प्रयास था। इसने बंगबासी की विशेषताओं को भी ग्रहण किया। एक थी वर्ष में एक बार एक पुस्तक का उपहार। 'हिन्दी बंगबासी' लोकप्रिय हुआ और इसकी प्रसार संख्या उचित वक्ता से भी अधिक हो गयी। 'हिन्दी बंगबासी' में कई गुण थे परन्तु एक कमज़ोरी थी। वह थी भाषा के स्तर की। और इसका मुख्य कारण यह था कि अमृतलाल चक्रवर्ती हिन्दी भाषी नहीं थे। वे हिन्दी के व्याकरण और परम्परा से अनभिज्ञ थे।

योगेशचन्द्र बसु की साहित्य में भी रुचि थी। उन्होंने बाङ्ला में एक उपन्यास लिखा था, जो 'बंगबासी' में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। बसु महोदय का आदेश था कि इस उपन्यास (मॉडेल भगिनी) का हिन्दी रूपान्तर, 'हिन्दी बंगबासी' में भी छपे। रूपान्तर करनेवाले का नाम शिक्षिता हिन्दू बाला दिया गया। बालमुकुन्द ने देखा कि अनुवाद बहुत ही घटिया है। अपने परिचित और 'हिन्दी बंगबासी' से सम्बन्धित भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र को पत्र लिखकर पूछा, साहित्य की मर्यादा बिगाड़नेवाला वह कौन मनुष्य है जो 'मॉडेल भगिनी' उपन्यास की मिट्टी खराब कर रहा है? मिश्र जी और अमृतलाल चक्रवर्ती ने संस्थापक से चर्चा की। विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय लिया गया कि शेष उपन्यास के

अनुवाद का काम बालमुकुन्द को सौंपकर देखा जाये। मिश्र ने बालमुकुन्द को लिखा। कुछ दिनों बाद मिश्र जी वकालत की परीक्षा की तैयारी के लिए छुट्टी पर चले गये। जब बालमुकुन्द द्वारा उपन्यास का अनुवाद 'बंगबासी' दफ़्तर में पहुँचा तो चक्रवर्ती ने खोला। उन्होंने बालमुकुन्द को लिखा :

"पंडित भुवनेश्वर मिश्र के नाम से 'मॉडेल भगिनी' का जो अनुवाद (आपने) भेजा है, वह पंडितजी की ग़ैर-हाज़िरी में मुझे ही खोलना पड़ा। आपका अनुवाद सब प्रकार से प्रशंसा योग्य हुआ है।...शायद पंडितजी से आप के बंगबासी आफिस में आने के बारे में कुछ दिन पहले लिखा-पढ़ी हुई थी और आपने शीघ्र ही अंग्रेज़ी की क़सर मिटाने की चर्चा भी उठायी थी। अगर मैं ही अंग्रेज़ी में उन्नति के बारे में इस समय आपकी सम्मति पूछूँ तो आप अप्रसन्न न होंगे। अवश्य ही और भी एक अभिप्राय है। आप जैसे सुलेखक तथा हिन्दी के परम रसिक से सदा एकत्र कार्य करने में बड़ा आनन्द होगा।"

दोनों के बीच पत्र-व्यवहार आगे भी चला। बालमुकुन्द 'बंगबासी' सेवा के लिए तैयार हो गये और कलकत्ता पहुँचे। वह यहाँ पहली बार आये थे। उपयुक्त निवास-स्थान का प्रबन्ध करने में कठिनाई हुई। 'उचित वक्ता' के संस्थापक ने उनके निवास का प्रबंध अपने ही प्रेस के एक हिस्से में कर दिया।

यहाँ गुप्तजी का सम्पर्क कई हिन्दी के विद्वानों से हुआ और ये 'हिन्दी बंगबासी' के सम्पादकीय कार्य में भी सहायक हुए, विशेषतया समाचार-पत्रों के लिए हिन्दी के विकास में। अब 'हिन्दी बंगबासी' के कार्यालय में विभिन्न प्रान्तों के लोगों का जमाव था। गुप्तजी हरियाणा, दिल्ली और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की भाषा का प्रतिनिधित्व करते थे। उर्दू और फ़ारसी के विद्वान थे ही। प्रताप नारायण मिश्र के भानजे प्रभुदयाल पांडेय ब्रजभाषा का प्रतिनिधित्व करते थे, भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र बिहार में बोली जानेवाली हिन्दी के विशेषज्ञ थे। अमृतलाल चक्रवर्ती बाङ्ला और गाज़ीपुर की हिन्दी की जानकारी रखते थे। सबने मिलकर हिन्दी का नया रूप बनाया। अमृतलाल चक्रवर्ती ने आगे चलकर लिखा :

"उस समय के व्यक्तियों को भाषा के प्रतिनिधि इसलिए मानना पड़ता है कि तब तक हिन्दी के आधुनिक साहित्य का साँचा प्रायः उन दिनों के लेखकों के मस्तिष्क में ही था। बंगबासी का आर्डर देने के दिन को हम तीनों साथ रहकर क़तल की रात बनाते थे। भाषा निर्णय के लिए हमारी लड़ाई ऐसी गहरी होती थी कि किसी-किसी दिन सारी रात बीत जाती थी। किस प्रान्त के लिए किस शब्द को कहाँ जोड़ने से भाषा का समुचित लालित्य होगा इस पर बड़ी ज़ोरदार बहस होती थी। स्वर्गीय भारतेन्दुजी काशी केन्द्र की भाषा को ही प्रान्तीयता के दोष से यथासंभव बचाकर अपनी मधुवर्षी लेखनी से बरसा गये थे। उनको अपना आदर्श मानकर भी हम किसी भी प्रान्त के भावद्योतक शब्द का अनादर नहीं करते थे। केवल शब्द ही नहीं, नाना प्रान्तों के भावपूर्ण मुहावरे भी हम भाषा में समाविष्ट कर लेते थे। इसके उपरान्त बाङ्ला, अंग्रेज़ी, संस्कृत और फ़ारसी के भी कितने ही मुहावरों का रुचिकर अनुवाद लगातार बरतते-बरतते आधुनिक हिन्दी साहित्य का वह अविच्छिन्न अंग बन गया है। आज के हिन्दी लेखकों को हमारी उन चोरियों और डाकेज़नियों का पता तक नहीं और वे उन सबको खालिस हिन्दी जानकर अब बेधड़क अपने में ला रहे हैं। यदि कोई नीर-क्षीर परीक्षा निपुण भाषाशास्त्री कभी भाषा के पूर्व पश्चात् रूपों का जाँचने का कष्ट उठावें तो उससे लोग जान सकेंगे कि हिन्दी बंगबासी में आधुनिक साहित्य का रूप ढालने के लिए क्या-क्या किया गया था? पंडित बदरी नारायण चौधरी 'हिन्दी बंगबासी' को भाषा गढ़ने की टकसाल बतलाते थे। उस टकसाल का कोई सिक्का बालमुकुन्द गुप्त की छाप के बिना नहीं निकलता था।"

बालमुकुन्द और सहयोगियों के प्रयत्नों के कारण 'हिन्दी बंगबासी' बहुत लोकप्रिय हुआ। इस लोकप्रियता का एक कारण तो बाङ्ला भाषा के सुविख्यात बंगबासी का नाम ही था। 'एज़ ऑफ़ कंसैंट बिल' पर विवाद के सम्बन्ध में अंग्रेज़ी सरकार ने उसे राजद्रोही घोषित कर प्रबन्धक, सम्पादक, मुद्रक को कड़ी सज़ा दी थी। बाद में उन्हें एक-एक लाख की जमानत पर छोड़ा गया था परन्तु जब तक मुक़दमा चलता रहा बंगबासी को ख्याति मिलती रही और इसका लाभ 'हिन्दी बंगबासी' को भी मिला और इसकी प्रसार-संख्या में वृद्धि हुई।

इस समय बालमुकुन्द की मैत्री हरियाणा के एक अन्य पत्रकार से हुई। यह थे माधवप्रसाद मिश्र। भिवानी के निकट कूँगड ग्राम में जन्मे, बालमुकुन्द से छः वर्ष छोटे, माधवप्रसाद ने देवकीनंदन खत्री के पत्र 'सुदर्शन' (वाराणसी) का सम्पादन किया था। बाद में उन्होंने कलकत्ता के 'वैश्योपकारक' का सम्पादन किया। यहीं दोनों में मैत्री हुई। मिश्र के अतिरिक्त गुप्तजी के कई अन्य मित्र भी थे। कालाकांकर के समय के शशिभूषण चटर्जी तो थे ही, बंगाली पत्रकारिता के मूर्धन्य पाँचकौड़ी बंद्योपाध्याय, न्यायाधीश शारदाचरण मित्र, कविराज ज्योतिर्मय सेन, प्यारे मोहन मुखोपाध्याय, सुरेशचन्द्र समाजपति, अमृतबाज़ार पत्रिका के सम्पादक मोतीलाल घोष को भी उनसे स्नेह था। अमृतलाल चक्रवर्ती तो पुराने सहयोगी थे ही। अलग होने के बाद जब एक बार चक्रवर्ती को एक व्यक्ति को जमानतदार बनकर उनके क़र्ज़ अदा न करने में असमर्थ होने से दीवानी जेल जाना पड़ा। बालमुकुन्द ही उन इने-गिने मित्रों में थे जो उन्हें मिलने जेल जाते और जिन्होंने उस कठिन घड़ी में चक्रवर्ती परिवार की आर्थिक सहायता भी की।

बंगबासी की आठ वर्ष की सेवा करने के बाद एक अवसर ऐसा भी आया जब गुप्तजी को इस पत्र से विदाई लेनी पड़ी। बंगबासी के संस्थापकों ने एक बड़ी योजना बनायी जिसके अन्तर्गत वे एक स्कूल, लेक्चर हाल और एक शिव मंदिर की स्थापना करना चाहते थे। इस कोष के लिए उन्हें धन की आवश्यकता थी और कलकत्ता में धन का एक बड़ा स्रोत था बड़ा बाज़ार के मारवाड़ी लोग। इन पर बालमुकुन्द के परम मित्र दीनदयालु शर्मा का बड़ा प्रभाव था। मारवाड़ी व्यापारी दिन भर काम कर सायंकाल दीनदयालु शर्मा का व्याख्यान सुनने जाते। दस-दस बजे तक वहाँ बैठते और जाते समय अच्छी-खासी राशि दान देकर जाते। एक दिन पन्द्रह हज़ार रुपया इकट्ठा हुआ। उन दिनों यह एक बड़ी भारी रक़म थी। 'बंगबासी' के संस्थापक चाहते थे कि उनके कोष में भी बड़ी राशि आवे। इसीलिए उन्होंने दीनदयालु शर्मा के विरुद्ध अभियान चलाया। बालमुकुन्द जानते थे कि 'बंगबासी' के प्रबन्धक शिवमंदिर के नाम पर धन इकट्ठा कर 'बंगबासी' के लिए एक विशाल कार्यालय बनाना चाहते थे। मित्र दीनदयालु के विरोध एवं अभिमान से असहमति के कारण उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया। स्वयं दीनदयालु शर्मा ने गुप्तजी को सलाह दी थी कि वह ऐसा न करें। परन्तु बालमुकुन्द अपने निर्णय पर डटे रहे। संयोग की बात है कि जिस गाड़ी से बालमुकुन्द गुप्त कलकत्ता से प्रस्थान कर गुडियानी पहुँचने के लिए दिल्ली जा रहे थे, उसी में दीनदयालु शर्मा भी दिल्ली जा रहे थे।

भारत मित्र

कलकत्ता में सोना-चाँदी के एक विशिष्ट व्यापारी थे बाबू जगन्नाथदास, जो नेशनल बैंक ऑफ़ इंडिया के सोने का व्यापार करनेवाले यह एकमात्र एजेंट थे। इनके कोई औलाद नहीं थी। पत्रकारिता की ओर रुचि थी। जब उन्हें पता चला कि 'भारत मित्र' घाटे में चल रहा है और बंद होनेवाला है तो उन्होंने इसे ख़रीद लिया। उनकी इच्छा थी स्वयं इसका सम्पादन करें। आवश्यकता पड़ने पर इसकी कम्पोज़िंग और प्रिंटिंग भी करें। परन्तु उनका धंधा काफ़ी फैला था और इस काम के लिए वह समय नहीं निकाल सकते थे। इसलिए वह चाहते थे कि उन्हें कोई ऐसा योग्य व्यक्ति मिल जाये जो इस काम को सँभाल ले। समय वही था जब बालमुकुन्द हिन्दी 'बंगवासी' से इस्तीफ़ा देने जा रहे थे। जगन्नाथदास ने बालमुकुन्द को कहलवाया कि वह 'भारत मित्र' को सँभाल लें। गुप्तजी ने इसलिए इन्कार कर दिया कि उन्हें एक दफ़्तर छोड़कर एकदम दूसरे में चला जाना अटपटा लगा। गुप्तजी व्यवहार में शिष्टता पर बड़ा ज़ोर देते थे। जो बात उन्हें अखरती वह साफ़-साफ़ कह देते। उन्होंने दास बाबू को कहलवाया कि वह इसीलिए कलकत्ता छोड़कर गुडियानी जायेंगे। यदि जगन्नाथदास वास्तव में 'भारत मित्र' को सौंपने के इच्छुक हों तो वह उन्हें पत्र लिखें।

'भारत मित्र' के बारे में वह बहुत कुछ जानते थे। वह हिन्दी का नामी पत्र था। जब सम्पादकों का एक मण्डल लार्ड रिपन को मिलने जा रहा था तो वे 'भारत मित्र' के कार्यालय में ही इकट्ठे होकर वहाँ से वाइसराय के निवास स्थान गये थे। फिर जब साम्राज्ञी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती मनायी जानी थी, तो भी एक सम्पादक मंडल 'भारत मित्र' के सम्पादक की अध्यक्षता में वाइसराय को मिलने गया था। 'भारत मित्र' इतना जाना-माना पत्र था कि उसके सम्पादक पद पर नियुक्ति एक प्रतिष्ठा और गौरव की बात थी।

गुडियानी पहुँचकर उन्हें जगन्नाथदास का निमंत्रण मिला। पत्र द्वारा बार-बार आग्रह किया गया। फिर तार भी भेजा कि उन्हें तुरन्त कलकत्ता पहुँचकर 'भारत मित्र' का कार्यभार सँभालने का निवेदन है। इस तरह कलकत्ते से गये छः सप्ताह ही गुज़रे थे कि गुप्तजी कलकत्ता फिर लौटे और 'भारत मित्र' का कार्य-

भार सँभाला। उनकी कलकत्ता-यात्रा का वर्णन आज भी पढ़ने योग्य है। जगन्नाथ दास ने बालमुकुन्द को बतलाया कि वह 'भारत मित्र' को कमाई का साधन नहीं बनाना चाहते। यदि कुछ मुनाफ़ा हो, तो उसे समाचारपत्र की उन्नति पर ही खर्च किया जाये—जिस ध्येय के लिए 'भारत मित्र' निकाला गया था देश और समाज की सेवा—उसे केवल उसी की पूर्ति करनी होगी। दास ने यह भी आश्वासन दिया कि वह 'भारत मित्र' के सम्पादन कार्य में बिल्कुल दखल न देंगे। आगे चलकर गुप्तजी ने भी लिखा कि दास बाबू ने अपना वचन निभाया। बालमुकुन्द ही इस पत्र के सर्वेसर्वा बने।

थोड़े ही महीने गुज़रे थे, कि बंगबासी वालों की शिवमंदिर वाली योजना पर फिर वाद-विवाद हुआ। इस बार गुप्तजी ने बंगबासी प्रबन्धकों की पोल खोल दी और बतलाया कि किस प्रकार बंगबासी वाले जनता की आँखों में धूल झोंक रहे हैं, कैसे वह पैसा इकट्ठा कर अपने कार्यालय पर लगानेवाले हैं। उन्होंने प्रबन्धकों की अनैतिकता पर भी रोशनी डाली—किस तरह वह 'विजयवाटिका' और 'शिवचंडी' चूर्ण जैसी नक़ली दवाइयों का धन्धा करते हैं और 'शिवचंडी' का आयोजन करते हैं जहाँ रंडियों के नाच की व्यवस्था की जाती है। 'बंगबासी' के विरुद्ध 'भारत मित्र' के अभियान से लोगों में जागृति हुई। जब 'बंगबासी' के प्रबन्धकों ने पाँचकौड़ी तथा अमृतलाल चक्रवर्ती से कहा कि वे यात्रा कर धन एकत्रित करने में हाथ बँटायें, तो दोनों ने इन्कार कर दिया, गुप्तजी ने अपनी टिप्पणियों में उन्हें खूब समर्थन दिया। दोनों ने इस्तीफ़ा दे दिया।

कुछ लोगों का मत है कि गुप्तजी भेदभाव करते थे क्योंकि वह सर्वदा कलकत्ता के मारवाड़ियों का पक्ष लेते थे। यह ठीक है कि गुप्तजी मारवाड़ी समाज के उत्थान में अवश्य दिलचस्पी लेते थे। वह स्वयं मारवाड़ी समाज के अंग थे और 'भारत मित्र' के भागीदारों में मारवाड़ी ही अधिक थे। मारवाड़ी समाज की विषमताओं को दूर करने के लिए और इस जाति की उन्नति के लिए वह अग्रसर रहते। मारवाड़ी एसोसिएशन, विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, मारवाड़ी चैम्बर ऑफ़ कामर्स, वैश्य सभा, सावित्री कन्या पाठशाला, श्री कृष्ण गोशाला और बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी इत्यादि संस्थाओं की प्रगति में वह विशेष दिलचस्पी लेते थे। एक बार मारवाड़ियों के लिए हावड़ा रेलवे स्टेशन के प्लेटफ़ार्मों पर प्रवेश पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये थे और रेलवे अधिकारी ही नहीं, कुली तक मारवाड़ियों का पूरा आदर नहीं करते थे। मारवाड़ी एसोसिएशन ने इस पर रोष प्रकट किया। इस सम्बन्ध में गुप्तजी ने लिखा :

"मारवाड़ियों ने कलकत्ता में बहुत कुछ नाम पैदा किया है। उनकी दशा यहाँ बहुत अच्छी है। उनकी संख्या भी खूब है और नित्य बढ़ती जाती

है। यहाँ के वाणिज्य की कुंजी मानों उन्हीं के हाथ में है। सब लोग उनकी उद्यमशीलता के आगे सिर नवाते हैं। यहाँ के मारवाड़ियों में लक्षाधीश दो-चार नहीं, सैकड़ों हैं। करोड़पति भी दो-एक नहीं है, ऐसा नहीं है। अंग्रेजों के 'हाउस' मारवाड़ी दलालों के ही चलाये चलते हैं। वाणिज्य में सारी पृथ्वी को जोतनेवाले अंग्रेज़ तथा इस देश के ज़मींदार, राजा-महाराजा लोग सब मारवाड़ियों को मानते हैं। कलकत्ते का बड़ा बाज़ार जो कलकत्ते की नाक तथा कलकत्ते के वाणिज्य का केन्द्र स्थल है, मारवाड़ियों की ही बदौलत ऐसा बना है। मारवाड़ियों के आने से पहले न बड़ा बाज़ार ही कुछ था और न इसकी शोभा ही थी। मारवाड़ी कलकत्ते में आकर रायबहादुर हुए, राजा हुए तथा और कितनी ही तरह के सम्मानों से सम्मानित हुए। मारवाड़ी एक नहीं, दो-दो, चार-चार, दस-दस और भी अधिक गाड़ी-घोड़े रखते हैं। उनके कोठियाँ हैं, बाग़-बगीचे हैं। उनके बाग़ों में अच्छे-अच्छे मकान हैं। परन्तु दुःख की बात यही है कि इतना कुछ होने पर भी मारवाड़ियों की आत्मशक्ति कुछ नहीं है। मानो, मारवाड़ी अनाथ हैं, संसार में उनका कोई नहीं है। इसका कारण क्या है? यही कि मारवाड़ियों में आत्मगौरव का ख़्याल नहीं, वह अपनी मानमर्यादा की रक्षा नहीं कर सकते हैं।"

एक अन्य अवसर पर उन्होंने लिखा :

"मारवाड़ी समाज का हाल अब कुछ पतला होता जाता है। उनके सामाजिक बन्धन भी ढीले होते जाते हैं। पहले मारवाड़ी लोग खानदान देखते थे, इज्ज़त देखते थे, मनुष्यत्व देखते थे, यह सब गुण होने पर धन की ओर भी देखते थे। परन्तु अब केवल धन देखते हैं, धन ही में सब गुण देखते हैं। धन के सिवाए और कुछ नहीं देखते। जो सात पीढ़ी का सेठ था, बड़ा धर्मात्मा नेक चलन था, खानदानी इज्ज़तदार था आज यदि समय के उलट-फेर से वह निर्धन हो गया है तो मारवाड़ी उसे दो कौड़ी का समझने लग जाते हैं। कल जिसके बाप ने यहाँ आकर अदना-से-अदना काम किया और आज वह धनी हो गया है तो मारवाड़ियों की आँख में उससे बढ़कर बड़ा खानदानी और कोई नहीं है। सब उसी की ओर दौड़ते हैं, उसके दोषों को भी गुण समझते हैं। परन्तु सदा से मारवाड़ी समाज की यह दशा नहीं थी। यह सत्य है कि वैश्यों को रुपया बहुत प्यारा होता है, पर सदा प्यारा होने पर भी मारवाड़ी समाज अपने धर्म को, अपनी जाति को, अपनी इज्ज़त को बड़ी प्यार की दृष्टि से देखता था। न जाने किस पाप के फल से आज मारवाड़ियों का वह भाव बदल चला है।"

बालमुकुन्द चाहते थे कि मारवाड़ी युवक उच्च शिक्षा ग्रहण करें। उनके समसामयिकों के अनुसार गुप्तजी द्वारा चलाये गये अभियानों का ही यह परिणाम है कि कलकत्ता के मारवाड़ियों ने कितनी ही शिक्षा संस्थानों का गठन किया। बालमुकुन्द ने संस्थाओं को महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। विशेषतया विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय और बड़ा बाज़ार लाइब्रेरी के गठन में।

मारवाड़ियों ने खूब धन कमाया है। इतना धन कि इस जाति में निर्धन बिरला ही कोई होगा। शायद इन बिरला लोगों में बालमुकुन्द स्वयं थे। उन्होंने सदा समाज और देश सेवा पर ज़ोर दिया, आत्म-समृद्धि पर नहीं। तत्कालीन कलकत्ता के कुछ मारवाड़ी लोग प्रायः यही कहते थे कि हम अपने धन से और अपने तौर-तरीक़ों से अन्य लोगों को खरीद सकते हैं या उन्हें प्रभावित करने में सफल होते हैं, परन्तु बालमुकुन्द को प्रभावित करना संभव नहीं। गुप्तजी समस्त समाज की विषमताओं पर तीव्र आघात करते और मारवाड़ी समाज की उन्नति को वह भारत की उन्नति के सन्दर्भ में भी चाहते थे।

गुप्तजी का कहना था कि 'भारत मित्र' का ध्येय था हिन्दी की प्रगति और देशोत्थान। क्योंकि हिन्दुओं की संख्या अधिक थी इसलिए 'भारत मित्र' उनके आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक दृष्टिकोण का समर्थन करता था। परन्तु यह समाचार-पत्र इस पक्ष में नहीं था कि हिन्दू-समाज अन्य जातियों को अपने में मिला ले। न ही यह किसी धर्म के विरुद्ध था। यह हिन्दुओं का समर्थन इसलिए भी करता था क्योंकि उन्होंने ही 'भारत मित्र' शुरू किया था। इसे चलाया और वे इसके लिए लिखते भी थे। उनका कहना था कि 'भारत मित्र' एक राजनीतिक पत्र है। आदि से इसकी यही नीति रही है। हिन्दी का प्रचार और राजनीतिक चर्चा इसके प्रधान उद्देश्य हैं। धर्म का आन्दोलन करना इसकी नीति नहीं है। पर ज़रूरत पड़ने पर उसमें शरीक होना वह अपना कर्तव्य समझता है।

हिन्दी प्रगति-पथ पर

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी को नयी दिशा दी थी। 1885 में उनके निधन के बाद, जिस संस्था ने हिन्दी के विकास में अधिकतम योगदान दिया वह है काशी की 'नागरी प्रचारिणी सभा'। इसका गठन 1893 में हुआ। आरम्भ में यह एक 'डिबेटिंग सोसायटी' थी जिसकी बैठकें भारतेन्दु नॉरमल स्कूल में होती थीं। कुछ बैठकें एक उद्यान में भी हुईं फिर 'नीचीबाग़' क्षेत्र के एक अस्तबल के ऊपर कमरे में। नागरी प्रचारिणी सभा के प्रथम अध्यक्ष थे भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्ण दास। इस कार्य में कई मित्रों ने सहयोग दिया। सभा अपने आपको राजनीतिक तथा धार्मिक मामलों से दूर रखती, इसका उद्देश्य था भारतेन्दु और स्वामी दयानन्द द्वारा चलाये गये हिन्दी भाषा को प्रोत्साहन, इसकी त्रुटियों को दूर करना, दुर्लभ ग्रंथों को ढूँढ़ निकालना और सम्पादकों की जीवनियाँ लिखवाना, हिन्दी साहित्य का इतिहास, भारत का इतिहास, विभिन्न विषयों पर पुस्तकें जैसे कवित्त, यात्रा, संस्मरण, विज्ञान आदि पर, हिन्दी में टंकण और आशु-लिपि की परीक्षाओं की व्यवस्था करना। सभा को यह भी प्रयास करना था कि स्कूलों में हिन्दी पढ़ाई जाये और अदालती काम में हिन्दी का अधिकतर प्रयोग हो। मदनमोहन मालवीय ने सभा के कार्य को पूरा समर्थन दिया। बालमुकुन्द तथा अन्य मित्रों ने भी।

भारत की ब्रिटिश सरकार ने उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मध्य भारत में उर्दू लिपि में हिन्दी के प्रयोग की अनुमति दे दी थी। फिर 1881 में बिहार तथा मध्य प्रान्त में देवनागरी लिपि में हिन्दी के प्रयोग की अनुमति दी। यू. पी. में भाषा तो हिन्दी थी, परन्तु लिपि फ़ारसी थी—यह निर्णय राजनीतिक था, क्योंकि सरकार उन लोगों के मत को महत्त्व देती थी जो देवनागरी लिपि का विरोध करते थे। उधर नागरी प्रचारिणी सभा अदालतों में देवनागरी लिपि के प्रयोग पर बल देती थी। उसका मत था कि यही एक ऐसी लिपि है जिसमें भाषा ऐसे ही लिखी जाती है, जैसे कि बोली जाती है। उर्दू के कई नामी विद्वानों ने भी स्वीकार किया कि देवनागरी लिपि उत्तम लिपि है। इसमें से एक थे सैयद अली बिलग्रामी, जिनका मत था कि मुसलमानों में शिक्षा का प्रचार

इसलिए पीछे पड़ गया था कि उन्हें फ़ारसी लिपि पढ़नी पड़ती थी। जहाँ देवनागरी सीखने में केवल एक दो महीने लगते हैं, वहीं फ़ारसी लिपि सीखने में कई वर्ष लग जाते हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने प्रचार के समर्थन में एक अंग्रेज़ी पुस्तिका का प्रकाशन भी किया। तीन वर्ष बाद इसने यू. पी. के गवर्नर के पास एक प्रतिनिधि मंडल भेजा तथा साठ हज़ार लोगों के दस्तख़त की हुई 'पिटीशन'। प्रतिनिधि मंडल के नेता स्वयं मालवीय जी थे। नागरी प्रचारिणी सभा ने यू. पी. प्रान्त भर में देवनागरी लिपि के अदालतों में प्रयोग के समर्थन में अभियान भी चलाया और यह सफल हुआ। क्योंकि सन् 1900 ई. में यू. पी. सरकार ने ऐसा आदेश दिया जिसके अन्तर्गत कोई भी नागरिक देवनागरी लिपि में अर्जी दे सकता था। अदालतों में भी देवनागरी लिपि का प्रयोग शुरू हुआ। सरकारी अधिसूचनाओं में देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपियों में प्रकाशन अनिवार्य कर दिया गया। अंग्रेज़ी अधिकारियों को छोड़कर अन्य सबको दोनों लिपियों का ज्ञान अनिवार्य कर दिया गया। नागरी प्रचारिणी सभा के इस अभियान को बालमुकुन्द गुप्त और 'भारत मित्र' ने पूर्ण समर्थन दिया। दोनों लिपियों में बराबर अधिकार होने के कारण, गुप्त निष्पक्ष राय देने की स्थिति में थे।

देवनागरी लिपि के लिए अभियान की सफलता पर कुछ लोगों में रोष फैला। उन्होंने इसे उर्दू की हार मानी। लखनऊ में एक 'उर्दू डिफेंस सिविल कमेटी' बनी। ऐसी ही समितियाँ इलाहाबाद, दिल्ली और लाहौर में भी स्थापित हुई 'भारत मित्र' में गुप्तजी ने देवनागरी के विरोधी उर्दू के समर्थकों के तर्कों का ज़ोरदार उत्तर दिया। उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा से कहा कि उर्दू के समर्थकों को यह बतलाने का प्रयास जारी रखें कि देवनागरी लिपि को स्वीकारने से उर्दू की कोई हानि नहीं होती। और जिसे वह उर्दू कह रहे हैं, वह हिन्दी ही है।

प्रारम्भिक काल के उर्दू कवियों ने इसे 'हिन्दवी' कहकर पुकारा। उन्होंने उर्दू के समर्थकों को यह भी बतलाया :

> "आप लोगों ने ज़बर्दस्ती हिन्दी को फ़ारसी अक्षरों में लिखना शुरू कर दिया, हालाँकि इस लिपि में हिन्दी ठीक लिखी नहीं जा सकती। शब्दों को तोड़-फोड़ कर लिखा जाता है 'प्रसाद' बनता है 'पर साद', 'समुद्र' बनता है 'समुन्दर', 'हरिद्वार' बनता है 'हर द्वार', 'वृंदावन' बनता है 'बिन्दरावन'। इसी प्रकार सैकड़ों ही हिन्दी शब्दों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है देवनागरी लिपि में लिखने से किसी की कोई हानि नहीं होगी, लाभ ही होगा। फ़ारसी लिपि आपके काम की भी नहीं है। तुम्हारे ही अली बिलग्रामी ने अपनी पुस्तक में भी यही सब लिखा है।"

लखनऊ के देवनागरी के विरोधियों ने पूछा था कि यदि देवनागरी इतनी ही उत्तम लिपि है तो व्यापारी लोग क्यों 'मुडिया' का प्रयोग करते हैं। बालमुकुन्द ने उत्तर दिया कि 'मुडिया' अक्षरों का प्रयोग केवल महाजनी कार्य में ही होता है। दिल्ली, लखनऊ और कलकत्ता के मुसलमान व्यापारी भी अपना बही-खाता महाजनी अक्षरों में रखते हैं। क्या यह इसलिए कि फ़ारसी अक्षर निकम्मे हैं? फिर नागरी अक्षर कुछ मुश्किल नहीं है। फ़ारसी अक्षरों की भाँति नागरी अक्षरों को सीखने में चार-पाँच साल नहीं लगते। उधर नागरी अक्षर तो महीने-पन्द्रह दिन में ही आ जाते हैं। यदि मुसलमान भाई नागरी सीखकर फ़ारसी अक्षरों से उनका मुक़ाबला करें और तब कुछ कहें तो बात बने। 'उल्टे अक्षर' शीर्षक से एक लेख में गुप्तजी ने लिखा : "उर्दू के समर्थकों को छोड़कर, संसार में सब लोग बाईं तरफ़ से दाईं तरफ़ को लिखते हैं। बेचारे बिलगरामी अपनी किताब की भूमिका में झींके थे कि उर्दू अक्षरों में ठीक-ठीक लिखने की शक्ति नहीं है, पढ़ने वाला अपनी लियाकत से ही शुद्ध पढ़ सकता है, अक्षरों में इतनी योग्यता नहीं है कि पढ़नेवाला अक्षरों के भरोसे शुद्ध पढ़ सके। एक बिन्दी के फेर में इन अक्षरों से बाबू 'याबू' और ख़ुदा 'जुदा' बन सकता है। 'हिन्दी-उर्दू का मेल' शीर्षक से एक निबन्ध में उन्होंने लिखा कि यदि मुसलमान लोग नागरी अक्षर सीखते और पुरानी हिन्दी का पठन-पाठन करते तो इस अक्षर के दो खंड न होते। हिन्दू मुसलमान सबकी एक भाषा होती। पर मुसलमान लोग हिन्दी को फ़ारसी लिपि में लिखने लगे। इसी तरह आप फ़ारसी शब्दों और फ़ारसी मुहावरों को उसमें घुसेड़ने लगे और वह एक अलग भाषा बनने लगी।"

गुप्तजी ने लिखा :

> " 'देवनागरी' किसी भाषा का नाम नहीं है। वह तो केवल वर्णमाला का नाम है। कोई पंडित ऐसा नहीं है, जो मुसलमानों को देवनागरी अक्षर सिखाने से इन्कार करे। मध्यप्रदेश के मुसलमान देवनागरी में अच्छी तरह लिख-पढ़ सकते हैं। केवल पढ़ते ही नहीं, स्कूल मास्टर बनकर कितने ही हिन्दुओं को पढ़ाते हैं। कितने ही मुसलमान देवनागरी लिखना-पढ़ना ही नहीं जानते, शुद्ध हिन्दी भाषा में उत्तम से उत्तम कविता भी करते हैं। बंगाल के मुसलमान बंगाक्षर यहाँ तक सीखते हैं कि फ़ारसी अक्षरों का वह नाम भी नहीं लेते। बम्बई के मुसलमान मराठी भाषा और मराठी अक्षर यहाँ तक सीख लेते हैं कि वहाँ के सरकारी दफ़्तरों में अनुवाद का काम करते हैं। बम्बई के अख़बारों पर जब सरकार ने मान-हानि का मुक़दमा चलाया था तो मुसलमान अनुवादकों से ही मराठी का अनुवाद अंग्रेज़ी में कराया था। यदि बंगाल के मुसलमान बंगाली अक्षर सीख सकते हैं और बम्बई के मराठी, तो क्या

लखनऊ के मुसलमानों को कोई देवनागरी अक्षर सिखानेवाला नहीं मिलेगा ?"

हिन्दी-उर्दू के सम्बन्ध में भी याद रखना चाहिए कि एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि हिन्दी के बड़े-से-बड़े विद्वान जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, माधव प्रसाद मिश्र, मदनमोहन मालवीय, बालकृष्ण भट्ट, श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी और बालमुकुन्द गुप्त आदि ने सबसे पहले उर्दू का अध्ययन किया और वे निष्पक्ष तौर से दोनों लिपियों की उपयोगिता का जायज़ा लेने की स्थिति में थे।

बालमुकुन्द गुप्त ने कई वर्षों तक इस सुझाव का अनुमोदन किया कि भारत की विभिन्न भाषाएँ देवनागरी लिपि का प्रयोग करें। अपने लेखों में उन्होंने लोगों का ध्यान कलकत्ता हाई कोर्ट के न्यायाधीश सर गुरुदास बन्द्योपाध्याय की उस सिफ़ारिश की ओर खींचा जिसमें भारत की विभिन्न लिपियों के मूल्यांकन के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि सारी भाषाएँ देवनागरी लिपि का उपयोग करें तो अच्छा हो। बालमुकुन्द के समकालीन न्यायाधीश शारदाचरण मित्र ने कलकत्ता विश्वविद्यालय इंस्टीच्यूट के सामने अपने एक निबन्ध में कहा था कि अब समय आ गया है कि सारी देशीय भाषाएँ देवनागरी का उपयोग करें। मित्र जी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि देवनागरी संसार की सर्वश्रेष्ठ लिपि है। उनका मत था कि इस लिपि का प्रचार तो बर्मा, चीन, जापान और श्रीलंका की भाषाओं के लिए भी होना चाहिए। बालमुकुन्द ने शारदाचरण मित्र के पूरे निबन्ध को 'भारत मित्र' के दो अंकों में प्रकाशित किया। इस विषय पर चर्चा का एक परिणाम यह था कि 'एक लिपि विस्तार परिषद्' का गठन हुआ। इसी संस्था ने 'देवनागर' नाम की एक पत्रिका भी निकाली जिसमें बाङ्ला, मराठी, गुजराती, उर्दू, ओड़िया और तमिल इत्यादि में सारे लेख देवनागरी लिपि में प्रकाशित हुए। कुछ समय बाद बालमुकुन्द गुप्त ने इस विषय में प्रगति के बारे में उर्दू की मासिक पत्रिका 'ज़माना' में भी एक लेख लिखा।

इससे पूर्व हम बतला चुके हैं कि 'हिन्दी बंगवासी' के सम्पादन काल में गुप्तजी अमृतलाल चक्रवर्ती और प्रभुदयाल पांडेय की त्रयी एक प्रकार से हिन्दी शब्दों की टकसाल थी, जहाँ विभिन्न भारतीय भाषाओं और अंग्रेज़ी का सहारा लेकर शब्दों को घड़ा जाता था। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी भाषा शैली, शब्दों और मुहावरों का उचित प्रयोग।

बालमुकुन्द जी जब कभी किसी समाचार-पत्र में किसी शब्द या मुहावरे का अनुचित प्रयोग देखते तो उसके बारे में 'भारत मित्र' में टिप्पणी लिखते। इन पर वाद-विवाद भी चलता। महावीर प्रसाद द्विवेदी से गुप्तजी का गहरा सम्बन्ध था।

उन दिनों से था जब बालमुकुन्द 'हिन्दोस्थान' का सम्पादन कर रहे थे। तब द्विवेदी जी ने उन्हें 'गंगालहरी' का पद्यात्मक अनुवाद भेजा था। और यह प्रकाशित भी हुआ था। अब द्विवेदी ने अपनी कुछ कृतियाँ 'भारत मित्र' को भेजीं। गुप्तजी ने उन्हें लिखा कि एक समाचार-पत्र के लिए उनकी भाषा क्लिष्ट थी। वह 'भारत मित्र' को जो भी लेख भेजें, उसकी भाषा सरल हो और साधारण पाठक की समझ में आये।

कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने भी (हमें) बतलाया है कि जब उन्होंने अपनी कविताएँ बालमुकुन्द को भेजीं तो बालमुकुन्द ने लिखा कि "कविता लिखने का यह ढंग बड़ा वाहियात है। देखूँगा, यदि छाप सका। और दो दिनों के अन्दर ही उन्हें वापस भिजवा दिया। मैथिलीशरण जी का कहना है, "बात उनकी ठीक थी, यह मैं सच्चे मन से मानता हूँ।"

इसी प्रकार एक बार श्रीधर पाठक को भी लिखा :

> "आपके सावित्री स्तम्भ के बारे में हमारे ऊपर बहुत लोगों ने एतराज किया है। विशेषकर 'सुदर्शन' वाले पंडित माधव प्रसादजी को बड़ा ऐतराज है। शायद उनके बहकाने से ही दिल्ली के पंडित विश्वम्भर दयालुजी ने लिखा था कि आप 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' से 'संस्वार्थ' का अर्थ पूछने चले हैं परन्तु अपने सावित्री स्तम्भ का अर्थ तो बताइये। मैं उसका ठीक-ठीक उत्तर न दे सका। इससे आप कृपाकर ठीक-ठीक उत्तर दें। इस समय आपने जो उत्तर दिया है उससे वह लोग मानेंगे नहीं। एक बार ठीक उत्तर दे देने ही से खटका मिट जाएगा।"

इन्हीं दिनों बालमुकुन्द जी द्वारा 'शेष' शब्द का प्रयोग 'अन्त' के अर्थ में किये जाने पर बड़ा वाद-विवाद चला। इस पर बम्बई से प्रकाशित 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' ने आपत्ति की। 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 'भारत मित्र' और 'हिन्दी बंगवासी' ही नहीं, बहुत-सी अन्य छोटी और बड़ी पत्र-पत्रिकाओं ने भी। गुप्तजी का मत था कि वह उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं, जो सर्वत्र प्रचलित हैं। अन्त में गुप्तजी ने 'शेष का शेष' शीर्षक से लिखा :

> "अक्सर समाचार-पत्रवाले हाकिम न होकर वकील होते हैं। 'वेंकटेश्वर समाचार' ने अपने चुने हुए आसामी 'शेष' की वकालत अच्छी तरह की। किन्तु सहयोगी को बड़ा ही कमज़ोर मुक़दमा लेकर वकालत आरम्भ करना पड़ा था। इससे परिणाम जो होना था सो होने पर भी सब लोगों को उस वकालत की प्रशंसा करनी होगी।"

इसी अंक में एक पत्र भी छपा जिसमें पत्र-प्रेरक ने साबित किया कि भारतेन्दु जी ने भी 'शेष' का अन्त के अर्थ में व्यवहार किया था। सो अब झगड़ा तय हो गया।

संयोग की बात है कि जब यह वाद-विवाद चल रहा था उन्हीं दिनों काशी की नागरी प्रचारिणी सभा के सहयोग से इलाहाबाद से 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हुआ और देवकीनन्दन खत्री ने काशी से 'सुदर्शन' निकाला। 'सरस्वती' ने टकसाली भाषा को ढालने में और शब्दों के उचित प्रयोग में और 'श्री वेंकटेश्वर समाचार', 'हिन्दोस्थान', 'हिन्दी बंगबासी', 'भारत मित्र', 'भारत जीवन' पत्रों में चल रहे 'वाद-विवादों' ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भाषा का मानकीकरण

एक हिन्दी प्रेमी के पत्र के उत्तर में बालमुकुन्द जी ने लिखा था :

" 'भारत मित्र' का सम्पादक आप ही का नहीं, समस्त हिन्दीवालों का है। सदा वह सब हिन्दी प्रेमियों का उत्साह बढ़ाने की चेष्टा किया करता है। हिन्दीवालों का बराबर तरफ़दार रहता है। उनके छोटे-मोटे को कोई दोष दिखावें तो उन पर काम भी नहीं धरता। केवल इतना अवश्य करता है कि जो पोथी उसे बुरी, नीति और सभ्यता के विरुद्ध, जँचती है या जिस पोथी से वह हिन्दुओं की हानि देखता है, उसके बनानेवाले को टोक देता है। जिससे वह वैसा करने से बाज़ रहे। यह बर्ताव उसका सदा सबसे है। अपने मित्रों और तरफ़दारों की पोथियों में भी उसने कोई दोष देखा तो धीरे से बता देने की चेष्टा की। उसने यदि किसी का मुक़ाबला किया तो उसका जो अपनी बड़ाई के लिए दूसरे हिन्दीवालों की बेइज्ज़ती करने आया।"

एक बार महावीरप्रसाद द्विवेदी ने बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखी गयी 'खिलौना' पुस्तक की समीक्षा में एक कविता उद्धृत की। किसी दूसरे व्यक्ति ने इसका उत्तर दिया। यह भी छपा। द्विवेदीजी रुष्ट हुए। इन्होंने और कड़ा रुख लिया। तब श्रीधर पाठक ने द्विवेदीजी को सलाह दी कि इस वाद-विवाद को आगे न बढ़ाइये। यह भी बतलाया कि 'खिलौना' के लेखक 'भारत मित्र' के सम्पादक बालमुकुन्द गुप्त ही हैं। द्विवेदी ने बालमुकुन्द को क्षमायाचना का पत्र लिखा और कहा यदि उन्हें मालूम होता कि लेखक स्वयं बालमुकुन्द हैं तो वह इतनी कड़ी आलोचना नहीं लिखते। गुप्तजी ने उत्तर दिया :

"जो चीज़ छापकर बेची जाती है उस पर कोई आलोचना करे तो अनुचित क्या है। खिलौना पर आपके लिखने से मुझे हर्ष है, दुःख नहीं। ऐसी बातों का ख़याल मुझे नहीं होता···(मैंने) आपकी कविता में दोष दिखाने की चेष्टा नहीं की परन्तु आज्ञा हो तो करूँ। पर शर्त यह है कि उसमें अन्य भाव न समझा जावे। ज़बरदस्ती किसी का दोष दिखाना मेरी आदत नहीं।···कल एक अंग्रेज़ी चिट्ठी कानपुर से लाला सीताराम के किसी मित्र की हमारे पत्र

के मालिक बाबू जगन्नाथ दास के यहाँ आयी है। लिखा है आपके भारत मित्र में पं. महावीरप्रसाद दुबे लाला सीताराम जी की पुस्तकों की बड़ी निन्दा छपवा रहे हैं सो बन्द की जावे। मैंने उत्तर लिखवाया है कि वह भी महावीर प्रसाद जी का जवाब देकर उनका मुँह बन्द क्यों नहीं कर देते? कमज़ोरी दिखाकर उनको शेर होने का अवसर क्यों देते है? सो मालूम पड़ता है कि या तो वह लोग बाबू साहब को दबाकर आपका आक्रमण बन्द करावेंगे, अथवा कुछ उत्तर देंगे। मेरी समझ में उत्तर देना अच्छा है। दबकर भीगी बिल्ली बनना ठीक नहीं।"

'सरस्वती' के नवम्बर, 1905 के अंक में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक से एक निबन्ध लिखकर एक बड़े भारी वाद-विवाद को जन्म दिया। अपने लेख में द्विवेदीजी ने कई विशिष्ट व्यक्तियों—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसाद, ठाकुर गदाधर सिंह, राधाचरण गोस्वामी, काशीनाथ खत्री, बालकृष्ण भट्ट सरीखे दिग्गज विद्वानों—की भाषा में क्रिया और लिंग इत्यादि की त्रुटियाँ दिखायीं। गुप्तजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने 'आत्माराम' के छद्मनाम से दस लेख लिखकर द्विवेदीजी को आड़े हाथों लेते हुए लिखा :

"पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी स्वयं बड़े भारी आलोचक होने का दावा करते हैं। जबकि आत्माराम ने तो आलोचना के केवल दस ही लेख लिखे हैं, द्विवेदी जी ने बड़ी-बड़ी पोथियाँ बनाकर डाल दी हैं। लाला सीताराम की पोथियों की आप बहुत कुछ आलोचना कर चुके हैं और किये जाते हैं। यहाँ तक कि उन आलोचनाओं की आप पोथियाँ तक छपवा चुके हैं। केवल इतना ही नहीं संस्कृत के स्वर्गीय पंडितों की भी आलोचना आपने की है और पोथियाँ रच डाली हैं। आलोचना में केवल उनकी तारीफ़ों के ढोल नहीं बजाये गये हैं, वरन उनकी भूलें दिखायी हैं, और उनके साथ दिल्लगी की है उनको टिटकारियाँ दी हैं। लाला सीताराम को सभ्यता का पाबंद बताकर उनकी बहुत हँसी उड़ायी है।...द्विवेदी जी ने कालीदास तक की खबर ली है। अब गत नवम्बर मास की 'सरस्वती' में 'भाषा और व्याकरण' का लेख लिखकर उन्होंने हिन्दी के नये पुराने लेखकों से जो बर्ताव किया है वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। उस लेख से क्या स्पष्ट होता है? क्या यह कि हिन्दी भाषा में कोई व्याकरण नहीं है और उसमें एक व्याकरण बनना चाहिए? क्या हिन्दी या हिन्दी के किसी लेखक के साथ उसमें कुछ सहानुभूति या श्रद्धा प्रकट होती है? इन बातों में से एक भी नहीं है। केवल यही स्पष्ट होता है कि हिन्दी में गदर मच रहा है। जितने पुराने लेखक थे, सब अशुद्ध लिखते थे। नये भी अशुद्ध और बेठिकाने लिखते हैं। जितने व्याकरण हिन्दी में हैं वह किसी काम के नहीं, शुद्ध हिन्दी लिखना कोई जानता नहीं। जो कुछ जानते हैं सो केवल उस लेख के लेखक। यदि हिन्दी में अच्छे व्याकरण नहीं हैं, और जो द्विवेदीजी को यह अभाव मेटने की भगवान ने शक्ति दी है तो एक अच्छा व्याकरण लिखने से उनको किसने रोका और अब कौन रोक सकता है? पर व्याकरण लिखना तो शायद चाहते नहीं। चाहते हैं अपनी सर्वज्ञता का डंका बजाना। आत्माराम को उनके लेख से उनकी सर्वज्ञता का सबूत नहीं मिला। इसी से उसने उनके लेख की आलोचना कर डाली।"

'हिन्दी में आलोचना' शीर्षक नाम से एक लेख में गुप्तजी ने लिखा :

"आलोचना की रीति अभी हिन्दी में भली-भाँति जारी नहीं हुई है और न लोग उसकी आवश्यकता ही को ठीक-ठीक समझे हैं। इससे बहुत लोग आलोचना देखकर घबरा जाते हैं, और बहुतों को वह बहुत ही अप्रिय लगती है। यहाँ तक कि जो लोग स्वयं इस मैदान में क़दम बढ़ाते हैं, अपनी आलोचना देखकर वही तुर्शरू हो जाते हैं। इससे हिन्दी में आलोचना करना भिड़ के छत्ते को छेड़ लेना है।"

'आत्माराम' के ये लेख आगे चलकर पुस्तिकाकार छापे गये। तब लोगों को पता चला कि आत्माराम स्वयं बालमुकुन्द गुप्त हैं। 'हिन्दी में आलोचना' शीर्षक से उन्होंने सात लेख और लिखे और बताया :

"आलोचक में केवल दूसरों की आलोचना करने का साहस ही न होना चाहिए, वरन् अपनी आलोचना दूसरों से सुनने और उसकी तीव्रता सहने की हिम्मत भी होनी चाहिए। जिस प्रकार वह समझता है कि मेरी बातों को दूसरे ध्यान से सुनें, उसी प्रकार उसे स्वयं भी दूसरों की बातें बड़ी धीरता और स्थिरता से सुननी चाहिये।"

शब्दों, वाक्य-रचना, व्याकरण और मुहावरों के सम्बन्ध में वाद-विवाद उन दिनों पत्रकारिता और साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। इनसे गुप्तजी के मन में मित्रों के प्रति भावनाओं पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता था। महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति उनके हृदय में आदर था। एक बार जब गुप्तजी कानपुर गये तो द्विवेदीजी को मिलने भी गये। गुप्तजी पुरानी परम्परा के अनुयायी थे। उन्होंने ब्राह्मण के प्रति आदर जताते हुए द्विवेदीजी के पाँव छुए। द्विवेदीजी भी गुप्तजी का आदर करते रहे।

एक बार उन्होंने एक मित्र से कहा था कि वाद-विवाद में गुप्तजी से वह सहमत थे। परन्तु पत्रिका की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। इसीलिए वाद-विवाद लम्बी अवधि तक चलाना पड़ा। जब राय कृष्णदास ने द्विवेदीजी से पूछा था कि कौन-सा हिन्दी लेखक सर्वोत्तम हिन्दी लिखता है तो उन्होंने केवल बालमुकुन्द का नाम लिया था।

प्रेमनारायण टंडन ने बालमुकुन्द की भाषा की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है : पहली विशेषता है, छोटे-छोटे वाक्यों का इस प्रकार गठन करना कि भाषा में विशेष प्रवाह रहे। दूसरी, उर्दू की चुलबुलाहट। तीसरी विशेषता है मुहावरों का प्रयोग और चौथी है, उनकी व्यंग्यपूर्ण शैली। "उनका व्यंग्य व्यक्ति को सजग और सावधान तो कर देता है परन्तु क्षुब्ध, क्रुद्ध या आहत नहीं करता।"

वस्तुतः जिस भारतेन्दु-युग का प्रतिनिधित्व गुप्तजी ने प्रतापनारायण मिश्र से ग्रहण किया था, उस युग की समाप्ति उनके साथ ही हो गयी।

हिन्दी के विकास के लिए गुप्तजी ने बहुत प्रयास किया था। उन्होंने एक लेख में लिखा :

> "यदि सचमुच हिन्दी की उन्नति की कामना आपके हृदय में चुभ गयी है तो कमर कसकर खड़े हो जाइये। आज ही आप प्रतिज्ञा कीजिये—"यत्न साधवं वा शरीरं पातयंवा"। वह देखिये प्रति वर्ष कितने ही युवक अंग्रेजी विद्या की बी. ए., एम. ए. पास कर रहे हैं। उनके हृदय में हिन्दी का रस प्रवेश कराइये। अब वह न तो हिन्दी पढ़ते हैं, न हिन्दी लिखते हैं। देश में जो थोड़े-से लोग हिन्दी लिखते हैं उनमें से बहुत ही थोड़े लोग हिन्दी लिखने की योग्यता रखते हैं। जितने लोग हिन्दी पढ़ते हैं उनमें से बहुत ही थोड़े लोग पढ़ी हुई बात को समझने की शक्ति रखते हैं। यदि सचमुच ही हिन्दी की उन्नति चाहते हैं तो यह दोष दूर करने की चेष्टा कीजिये। दोष दूर करने का उपाय केवल पढ़े हुए लोगों से लिखाने के साथ उनकी लिखी हुई चीजें बिकवाने की चेष्टा करना है। वह चेष्टा धन के बिना नहीं हो सकती। यदि हिन्दी पर सचमुच अनुराग हुआ तो हिन्दी की उन्नति के लिए धन-संग्रह कीजिये। सुयोग्य पण्डितों से हिन्दी की प्रयोजनीय पुस्तकें लिखाकर संग्रहीत धन से खरीद लीजिये। वह पुस्तकें देश में बाँटकर देशवासियों में हिन्दी अपने उचित स्थान को प्राप्त कर देशवासियों को अपने फल-फूल-पत्र-पल्लवों से सुशोभित होकर बहार दिखा सकेगी।"
>
> ···"किसी लाइब्रेरी में जाइये, आप देखेंगे कि अलमारी की अलमारी अंग्रेज़ी किताबों से भरी हुई हैं। काव्य, अलंकार, न्याय, दर्शन, विज्ञान प्रभृति में, चाहे जिस विषय की पुस्तकों की आलोचना करने में जीवन गँवा डालिये, किन्तु किताबों का शेष नहीं होगा। और संस्कृत विद्या के हर एक विभाग में केश पकाये हुए कितने सुविज्ञ लोग आज तक काशी की विद्यापुरी में विद्यमान हैं। अब तक विद्या ही सीख रहे हैं विद्या का पार नहीं देख सकते। किन्तु हमारी हिन्दी मिडल क्लास तक पढ़ने में प्रायः पूरी हो जाती है। आगे और किताब नहीं कि पढ़कर विद्या बढ़ावें—इस लेख के लेखक ने मिडल क्लास के अतिरिक्त हिन्दी नहीं पढ़ी थी, किन्तु आज वह हिन्दी साहित्य के लेख लिखने का दावा रखता है।"

गुप्तजी चाहते थे कि हिन्दी भाषा में अच्छी किताबें प्रकाशित हों। 'भारत मित्र' का कार्यभार सम्भालने पर गुप्तजी ने 'बंगबासी' की प्रतिवर्ष पाठकों को एक पुस्तक उपहार के तौर पर देने की परम्परा को भी अपनाया। उन्होंने अष्टछाप के कवि नन्ददास की 'रास पंचाध्यायी' और 'भ्रमर गीत' की प्रमाणित प्रतियाँ उपलब्ध कर और उनका सम्पादन कर पाठकों को उपहार के रूप में दीं। आगे चलकर गुप्तजी ने अब्दुर्रहीम खानखाना द्वारा लिखित 'अकबरनामा' और मुंशी देवीप्रसाद द्वारा लिखित 'जहाँगीरनामा' और 'हुमायूँनामा' की प्रतियाँ भी उपहार में दीं। ऐसे ही एक हज़ार पन्ने की 'हिन्दी भागवत' भी दी गयी।

गुप्तजी ने स्वयं 'हरिदास' का हिन्दी-रूपान्तर तैयार किया। सम्राट हर्षवर्द्धन द्वारा लिखित 'रत्नावली' का अनुवाद भी किया। इसकी भी अपनी एक कहानी है। गुप्तजी को पता चला कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'रत्नावली' के एक अंश का अनुवाद किया था जिसे बाँकीपुर, पटना के खड्गविलास प्रेस ने प्रकाशित किया था। भारतेन्दु ने अपनी पुस्तक 'नाटक' में लिखा था कि इसका अनुवाद सरकारी कॉलेज के एक अध्यापक ने किया था और इसे सरकारी व्यय से छापा गया था। परन्तु यह अनुवाद बहुत घटिया था और भारतेन्दु को बड़ा दुःख हुआ था। इसी-लिए भारतेन्दु ने इस काम को अपने हाथ में लिया। परन्तु वह इसे पूरा नहीं कर सके। 1902 में बालमुकुन्द गुप्त ने इसका हिन्दी में अनुवाद करने का साहस किया। इसे 'हिन्दी बंगबासी' के पाठकों को उपहार के रूप में देना था। केवल एक महीने का समय मिला था। काम अच्छा नहीं हुआ। छपाई भी खराब हुई। फिर भी कुछ साहित्यकारों ने प्रशंसा की। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा :

> "रत्नावली का जो अनुवाद आपने किया है वह हमने देखा है···जैसा श्रीधरजी अंग्रेज़ी का अच्छा अनुवाद करके पढ़नेवालों के मन को मोहित कर लेते हैं वैसा ही आप संस्कृत का अनुवाद करके मोहित कर लेते हैं।"

परन्तु गुप्तजी इस बात से सन्तुष्ट नहीं हुए। चार वर्ष बाद भारत मित्र के पाठकों को उपहार में देने के लिए पुस्तक का चयन करना था। गुप्तजी का ध्यान फिर 'रत्नावली' की ओर गया। इसे ध्यान से पढ़ा। शुद्धिकरण के लिए अपने

सामने दो संस्कृत, दो बाङ्ला और दो ही हिन्दी के संस्करण रखे। कविता का बहुत सारा अंश जो पहले छूट गया था उसे संयोजित किया। पुस्तक को शुद्ध और सरल बनाने की चेष्टा की। भूमिका में गुप्तजी ने लिखा :

"इस नाटिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था क्योंकि मैं संस्कृत अच्छी तरह नहीं जानता। स्वर्गीय भारतेन्दुजी पर भक्ति के कारण ही मैंने यह काम किया।"

समालोचना

बालमुकुन्द गुप्तजी को बहुत-सी हिन्दी पुस्तकों को पढ़ने का विपुल अवसर मिला। कुछ समालोचना के लिए आती थीं। वे इन्हें हिन्दी साहित्य संसार के सजग प्रहरी की तरह पढ़ते। 1899 में पटना के एक सज्जन पत्तनलाल 'सुशीलजी' ने गोल्ड-स्मिथ की तीन कृतियों—'हरमिट', 'डिजर्टेड विलेज' और 'ट्रैवलर'—का पद्यात्मक अनुवाद किया और 'साधु', 'ऊजड़ गाँव' और 'यात्री' के शीर्षक से इन्हें भारत जीवन प्रेस से प्रकाशित करवाया। गुप्तजी ने देखा कि 'सुशीलजी' ने श्रीधर पाठक द्वारा खड़ी बोली में लिखित 'एकांतवासी योगी' और 'ऊजड़ ग्राम' की नक़ल मारी है। श्रीधर पाठक के अनुवादों की भारत और विदेशों में प्रशंसा हुई थी। इन अनुवादों के प्रकाशन के बाद पाठकजी ने चुप्पी साध ली थी और लोग उन्हें भूल भी गये थे। अब सुशीलजी के घटिया अनुवादों ने उनके महत्त्वपूर्ण योगदान की याद ताज़ा कर दी। गुप्तजी ने पाठक और सुशीलजी को पाठकों से उद्धरण देकर 'कविता पर कविता' शीर्षक से अपने मत की पुष्टि की और लिखा :

"दुःख की बात है कि सुशीलजी ने नक़ल की सो भी अच्छी नहीं बनी। इसके सिवाय सुशील कवि ने कोई कारण नहीं दिखाया कि श्रीधरजी की पुस्तकों के होते उनको ऐसी नक़ल करने की क्या ज़रूरत पड़ी थी। यदि न्याय से देखा जाये तो सुशीलजी ने अच्छे कवियों के करने योग्य काम नहीं किया। यदि वह और किसी अन्य अंग्रेज़ी कविता का अनुवाद करते, उनका सुनाम भी होता। हम और अधिक क्या कहें, सुशीलजी स्वयं समझ लें।"

'सुशीलजी' पर इस टिप्पणी का बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी ग़लती स्वीकार की और गुप्तजी से निवेदन किया कि वे उनकी इस क्षमा-याचना को छाप दें।

"....यदि सत्य ही में मुझसे कुछ अनुचित हो गया है तो अब तो वह उचित होगा ही नहीं, उस अनुचित के लिये सब विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि क्षमा करें और भली-भाँति ग्रन्थों को देखकर अनुचित समझें तो प्रशंसा को

तो भाड़ में जाने दें किन्तु बदनाम करने की ओर ध्यान न दें। विशेष विनय।"

पं. सुधाकर चतुर्वेदी ने तुलसीकृत 'रामचरित मानस' का संस्कृत में अनुवाद किया। जब गुप्तजी को इसका समाचार मिला तो उन्होंने लिखा कि तुलसीदास ने स्वयं वाल्मीकि कृत रामायण का हिन्दी में रूपान्तर किया था। उसको दोबारा संस्कृत में अनूदित करने का क्या फ़ायदा? कितने और कौन लोग इसे पढ़ेंगे?

गुप्तजी घटिया और सतही तौर पर लिखी पुस्तकों की सदा भर्त्सना करते। किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' उपन्यास में कुछ भद्दे अंशों की ओर ध्यान आकर्षित किया और नागरी प्रचारिणी सभा से आग्रह किया कि वे ऐसी पुस्तकों के प्रकाशन को रोकने के रास्ते निकालें।

पं. प्रतापनारायण मिश्र चाहते थे कि वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवनी लिखें परन्तु इस कार्य में बिल्कुल प्रगति नहीं हुई। तब राधाकृष्ण दास ने बालमुकुन्द गुप्त को लिखा कि वह इस काम को हाथ में लें। फ़रवरी और फिर जुलाई 1892 में उन्होंने गुप्तजी से पूछा कि उन्होंने मिश्रजी से जीवनी के लिए सामग्री ले ली या नहीं। 2 अक्तूबर, 1892 में फिर पूछा कि कितनी प्रगति हुई। थोड़े समय बाद गुप्तजी 'हिन्दी बंगबासी' में चले गये। अब वह इस जीवनी को लिखना चाहते थे परन्तु समयाभाव के कारण लिख नहीं सके तब बाबू राधा कृष्णदास ने भारतेन्दु जी का एक जीवन चरित लिखा जो 1900 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुआ। पर्याप्त उत्सुक होते हुए भी गुप्तजी भारतेन्दु की जीवनी लिखने में सफल नहीं हुए। हाँ, कुछ रेखाचित्र अवश्य लिखे जो 'भारत मित्र' में छपे। इनके नायक थे: प्रतापनारायण मिश्र, पं. देवकीनन्दन तिवारी, साहित्याचार्य अम्बिकाप्रसाद व्यास, पंडित देवीसहाय, पंडित प्रभुदयाल, बाबू रामदीन सिंह, पंडित गौरीदत्त, मुंशी देवीप्रसाद और योगेशचन्द्र बसु। इनके अलावा, अकबर, टोडरमल, शेख सादी, शाइस्ता खाँ, हर्बर्ट स्पेंसर और मैक्स मूलर के ऊपर भी रेखाचित्र लिखे।

गुप्तजी ने 'ज़माना' के लिए मौलवी शम्स उलेमा मुहम्मद हुसैन आज़ाद पर एक लम्बा जीवन-चरित लिखा। वह चाहते थे कि 'ज़माना' के लिए ही प्रतापनारायण मिश्र, हरिश्चन्द्र, 'अवध पंच' के सम्पादक सज्जाद हुसैन, मिर्ज़ा मुहम्मद बेग आशिक़ और सितम जरीफ़ पर भी लेख लिखें। यदि समय साथ देता तो बहुत सारी योजनाएँ थीं। परन्तु सब कुछ ईश्वर के हाथ में था।

गुप्तजी का यह प्रयास भी था कि उर्दू के माध्यम से पाठकों को हिन्दी के बारे में जानकारी दें। उर्दू और हिन्दी समाचार-पत्रों के बारे में भारतमित्र में धारावाहिक लेखों के सम्बन्ध में निगम को लिखा:

"इस मजमून के लिखने से मेरा मतलब प्रेस की इसलाह और उर्दू-हिन्दी के झगड़े का तसफ़िया है, जिसकी बहुत ज़रूरत है। यह मजमून 'भारत मित्र' में निकला मगर अफ़सोस है कि उर्दू अख़बारवाले हिन्दी से महज नावाकिफ़ हैं, इससे मुझे उसका तर्जुमा एक उर्दू के अख़बार में छपवाना ज़रूरी है।"

जीवन के आख़िरी दौर में भी बालमुकुन्द जी उर्दू पत्रिका 'ज़माना' में लिखते रहे क्योंकि इसके सम्पादक दयानारायण निगम से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। निगम ने बालमुकुन्द को कई बार 'ज़माना' के लिए लिखने को कहा। गुप्तजी कहते, वह ठहरे पुराने ढर्रे के आदमी। और फिर उनके पास बहुत समय भी नहीं था। फिर भी यदि निगम जी का आग्रह हुआ तो वे ज़माना के लिए अवश्य लिखेंगे। अक्तूबर 1906 में गुप्तजी को कानपुर में 'ज़माना' के सम्पादक से भेंट हुई। निगम के साथ नवाब राय भी थे जो आगे चलकर प्रेमचन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुप्तजी ने अपनी डायरी में लिखा: "स्टेशन पर एक गोरे अफ़सर ने उनसे बड़ा खराब बर्ताव किया। वह बुरा ही नहीं, बड़ा बेईमान और बदनीयत था।" निगम से उनका सम्बन्ध इतना निकट का था कि जब दिसम्बर 1906 में निगम और उनके मित्र कांग्रेस के वार्षिक सम्मेलन में कलकत्ता गये तो गुप्तजी के घर पर ही ठहरे।

निगम ने एक बार गुप्तजी को लिखा था कि 'ज़माना' में उनकी दिलचस्पी कम होती जा रही है। तब गुप्तजी ने उत्तर में लिखा कि 'भारत मित्र' को छोड़कर वह केवल 'ज़माना' के लिए ही लिखते हैं। 'ज़माना' के लिए ही इस बुढ़ापे में उन्होंने 'शिवशम्भू का चिट्ठा' (उर्दू में) लिखा। गुप्तजी काम इतना करते थे कि दिन-रात में समाप्त ही नहीं होता। 'ज़माना' के लिए रात को जाग-जागकर लेख लिखते। अन्तिम दिनों में गुप्तजी 'सरस्वती' की तरह का एक मासिक पत्र निकालना चाहते थे। वह हिन्दी का इतिहास भी लिखना चाहते थे। इसके लिए बड़ी सामग्री भी इकट्ठी कर रहे थे। गुप्तजी का विचार था कि इस इतिहास में वैदिक युग से लेकर मुसलमानी शासन तक हिन्दुस्तान की भाषा की हालत, उसमें परिवर्तन और हेर-फेर दिखलाकर ब्रजभाषा और हिन्दी का इतिहास लिखा जाये। उर्दू-हिन्दी की भावी दशा पर भी वे इस किताब में विचार करनेवाले थे। संस्कृत और हिन्दी के बारे में विस्तार से, और उर्दू के बारे में भी थोड़ी-बहुत चर्चा करना चाहते थे क्योंकि इस विषय पर मुहम्मद हुसैन आज़ाद पहले ही बहुत कुछ लिख चुके थे। अगर यह पुस्तक पूरी हो जाती तो हिन्दी के लिए एक नयी उपलब्धि होती। इस पुस्तक की सूचना ज़माना में निकल चुकी थी। गुप्तजी के निधन के एक वर्ष बाद जो तीस पन्ने उन्होंने लिखे थे, पुस्तकाकार छापा गया। भूमिका लिखी अमृतलाल चक्रवर्ती ने और इसके दो-दो संस्करण निकले।

शिवशम्भू के चिट्ठे

महावीरप्रसाद द्विवेदी युग के प्रसिद्ध विद्वान आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखा है कि बालमुकुन्द पहले उर्दू के अच्छे लेखक थे, इससे उनकी हिन्दी बहुत चलती और फड़कती हुई थी। वे विचारों को विनोदपूर्ण वर्णनों के भीतर ऐसा लपेट करके रखते थे कि उनका आभास बीच-बीच में ही मिलता था। शुक्लजी का संकेत गुप्तजी के उन चिट्ठों की ओर है जिन्हें उन्होंने शिवशम्भू के उपनाम से लिखा और जो वाइसराय लार्ड कर्ज़न को, पूर्वी बंगाल के गवर्नर फुलर के नाम, या जन्नत में शाइस्ता खाँ के नाम लिखे गये, या उन पत्रों के बारे में जिन्हें सर सैयद अहमद खान ने अलीगढ़ विश्वविद्यालय के छात्रों को लिखा। ऐसे विनोदपूर्ण पत्र न गुप्तजी से पहले लिखे गये और न ही उनके बाद।

शिवशम्भू के छद्म नाम से लिखे गये ये दस पत्र साप्ताहिक 'भारत मित्र' और कुछ उर्दू मासिक 'ज़माना' में छपे। इनके प्रकाशन पर तहलका-सा मच गया था। दयानारायण निगम के अनुसार इन्हें पुस्तकाकार भी छापा गया। इनका अंग्रेज़ी में अनुवाद भी हुआ। अंग्रेज़ अधिकारियों ने इन्हें बड़े चाव से पढ़ा और कई-कई प्रतियाँ खरीदीं। एक प्रति तो लार्ड कर्ज़न को भी दी गयी।

'शिवशम्भू के चिट्ठे' इतने लोकप्रिय हुए कि कुछ समाचार-पत्रों ने इनकी नक़ल में इसी नाम से चिट्ठे गढ़ने शुरू कर दिये। कुछ पत्रों ने बिना नाम और हवाले के असली चिट्ठे बनाकर छापे। लाहौर के अख़बार 'हिन्दुस्तान' में भी कुछ अनियमितताएँ हो गयीं। गुप्तजी ने लिखा था :

> "हिन्दुस्तान ने नया ढंग निकाला है। पहले तो उसने कई चिट्ठे नक़ल किये, अब वह स्वयं शिवशम्भू के नाम से दो चिट्ठे गढ़कर शहीद बन बैठा है। कैसी बुरी तृष्णा है, आप भी नोट करें।"

गुप्तजी ने बड़े लाट लार्ड डफ़रिन, लैन्सडाउन, एलगिन, कर्ज़न और मिंटो का शासन समय देखा था। उनकी 'भारत मित्र' के सम्पादन का काल वही था जो लार्ड कर्ज़न का था। लार्ड कर्ज़न जनवरी 1899 में भारत पहुँचे और बालमुकुन्द ने भी जनवरी 1899 में 'भारत मित्र' का कार्यभार सम्भाला। कर्ज़न का शासन-

काल भारत में अंग्रेज़ी राज्य का स्वर्णकाल माना जाता था। लार्ड कर्ज़न होशियार तो थे परन्तु अहंकार, आत्मश्लाघा, ज़िद और गाल बजाई में अपने सानी आप निकले। उन्होंने दावा किया था कि कांग्रेस मर रही है और मैं इसकी अंत्येष्टि करके ही स्वदेश लौटूँगा। उन्होंने भारतीयों को झूठा और मक्कार कहा। यूनिवर्सिटी कमीशन नियुक्त कर शिक्षा पर नियंत्रण करना चाहा। कलकत्ता कॉरपोरेशन में नागरिकों के प्रतिनिधियों की संख्या में कटौती कर दी। उनकी रुचि ठाट-बाट और शान-ओ-शौक़त में थी। उन्होंने दिल्ली में एक दरबार का आयोजन किया और कलकत्ता में विशाल विक्टोरिया मेमोरियल बनवाया। दिल्ली दरबार में जहाँ गुप्तजी को भी आमंत्रित किया गया था, उन्होंने देखा कि भारत के कोने-कोने से कितने ही राजे-महाराजे चमकीली-भड़कीली पोशाक़ में लार्ड कर्ज़न को सलामी देने वहाँ उपस्थित हुए। कर्ज़न जिस हाथी पर बैठे उस पर सोने का हौदा था और हाथी भी असाधारणतया ऊँचा था। साथ में ड्यूक आफ कनॉट थे जिनके हाथी पर चाँदी का हौदा था और जिनका हाथी थोड़ा छोटा था। गुप्तजी ने इन सब तथ्यों का चिट्ठों में विनोदपूर्ण ढंग से चित्रण किया और उनके ऐसे दावों का जैसे वे भारत को अपना कर्मक्षेत्र समझते हैं अपने ही ढंग से मज़ाक उड़ाया। नीचे हम उनके चिट्ठों के कुछ अंश देते हैं :

> "माई लार्ड, जिस पद पर आप आरूढ़ हुए वह आपका मौरूसी नहीं है। नदी नाव संयोग की भाँति है। आगे भी कुछ आशा नहीं कि इस बार छोड़ने के बाद आपका इससे कुछ सम्बन्ध रहे। किन्तु जितने दिन आपके हाथ में शक्ति है, उतने दिन कुछ करने की शक्ति भी है। जो कुछ आपने दिल्ली आदि में कर दिखाया उसमें आपका कुछ भी न था, पर वह सब कर दिखाने की शक्ति आप में थी। उसी प्रकार जाने से पहले इस देश की प्रजा के हृदय में कोई स्मृति-मंदिर बना जाने की शक्ति आप में है। पर यह सब तब हो सकता है कि वैसी स्मृति की कुछ क़दर आपके हृदय में भी हो। स्मरण रहे धातु की मूर्तियों के स्मृति चिह्न से एक दिन क़िले का मैदान भर जाएगा। महारानी का स्मृति-मंदिर मैदान की हवा को रोकता था, या न रोकता था। पर दूसरों की मूर्तियाँ इतनी हो जावेंगी कि पचास-पचास हाथ पर हवा को टकराकर चलना पड़ेगा।...इस दरिद्र देश में बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखने से विदित होता है कि वह कुछ पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़-कर कुछ नहीं है। माई लार्ड ! आपकी मूर्ति की वहाँ क्या शोभा होगी ? आइये मूर्तियाँ दिखावें। वह देखिये, एक मूर्ति है जो क़िले के मैदान में नहीं है, पर भारतवासियों के हृदय में बनी हुई है। पहचानिये। इस वीर पुरुष ने

मैदान की मूर्ति से इस देश के करोड़ों ग़रीबों के हृदय में बनवाना अच्छा समझा। यह लार्ड रिपन की मूर्ति है। और देखिये। एक स्मृति मंदिर, यह आपके पचास लाख के संगमरमरवाले से अधिक मज़बूत और सैकड़ों गुना कीमती है। यह स्वर्गीया विक्टोरिया महारानी का सन् 1858 का घोषणा-पत्र है।

× × ×

सुना है कि अब के विद्या का उद्धार श्रीमान् ज़रूर करेंगे। उपकार का बदला देना महत् पुरुषों का काम है। विद्या ने आपको धनी किया है। इससे आप विद्या को धनी किया चाहते हैं। इसी से कंगालों से छीनकर आप धनियों को विद्या देना चाहते हैं। इससे विद्या का वह कष्ट मिट जावेगा जो उसे कंगाल को धनी बनाने में होता है। नींव पड़ चुकी है, नमूना क़ायम होने में देर नहीं। अब तक ग़रीब पढ़ते थे, इससे धनियों की निंदा होती थी कि वह पढ़ते नहीं। अब ग़रीब न पढ़ सकेंगे, इससे पढ़ें-न-पढ़ें उनकी निन्दा न होगी। इस तरह लार्ड कर्ज़न की कृपा उन्हें बेपढ़े भी शिक्षित कर देगी।

और कई काम हैं। कई कमीशनों के काम का फ़ैसला करना है। कितनी ही मिशनों की कार्रवाई का नतीजा देखना है। काबुल है। काश्मीर है, काबुल में रेल चल सकती है, काश्मीर में अंग्रेज़ी बस्ती बस सकती है। चाय के प्रचार की भाँति मोटर गाड़ी के प्रचार की इस देश में बहुत ज़रूरत है। बंगदेश का पार्टीशन भी एक बहुत ज़रूरी काम है। सबसे ज़रूरी काम विक्टोरिया मेमोरियल हाल है। सन् 1858 की घोषणा अब भारतवासियों को अधिक स्मरण रखने की ज़रूरत न पड़ेगी।

× × ×

आपने स्वयं फ़रमाया था कि बहुत बातों में हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ों का मुक़ाबला नहीं कर सकते। फिर लार्ड कर्ज़न तो इंगलैंड के रत्न हैं। उनके दिमाग़ की बराबरी कर गुस्ताख़ी करने की यहाँ के लोगों को यह बूढ़ा-भंगड़ कभी सलाह नहीं दे सकता। श्रीमान् कैसे आली दिमाग़ शासक हैं, यह बात उनके उन लगातार कई व्याख्यानों से टपकी पड़ती है जो श्रीमान् ने विलायत में दिये थे और उनमें विलायतवासियों को यह समझाने की चेष्टा की थी कि हिन्दुस्तान क्या वस्तु है? साफ़ दिखा दिया था कि विलायतवासी यह नहीं समझ सकते कि हिन्दुस्तान क्या है। हिन्दुस्तान को श्रीमान् स्वयं ही समझे हैं। विलायतवाले समझते तो क्या समझते? विलायत में उतना बड़ा हाथी कहाँ जिस पर वह चँवर-छत्र लगाकर चढ़े थे? फिर कैसे समझा सकते कि वह किस उच्च श्रेणी के शासक हैं? यदि कोई ऐसा उपाय निकल सकता, जिससे वह एक बार भारत को विलायत तक खींच ले जा सकते तो विलायत-

वालों को समझा सकते कि भारत क्या है और श्रीमान् का शासन क्या? आश्चर्य नहीं भविष्य में ऐसा कुछ उपाय निकल आवे। क्योंकि विज्ञान अभी बहुत कुछ करेगा। भारतवासी ज़रा भय न करे, उन्हें लार्ड कर्ज़न के शासन में कुछ करना न पड़ेगा। आनन्द-ही-आनन्द है।

यह वह देश है जहाँ की प्रजा एक दिन पहले रामचन्द्र के राजतिलक पाने के आनन्द में मस्त थी और अगले दिन अचानक रामचन्द्र वन को चले तो रोती-रोती उनके पीछे जाती थी। भारत को उस प्रजा का मन प्रसन्न करने के लिए कोई भारी दरबार नहीं करना पड़ा, हाथियों का जुलूस नहीं निकालना पड़ा, वरंच दौड़कर वन जाना पड़ा और रामचन्द्र को फिर अयोध्या में लाने का यत्न करना पड़ा। जब वह न आये, तो उनकी खड़ाऊँ को सिर पर धर कर अयोध्या तक आये और खड़ाउँओं को राजसिंहासन पर रखकर स्वयं चौदह साल तक बल्कल धारण करके उनकी सेवा करते रहे।

संसार में अब अंग्रेज़ी प्रताप अखंड है। भारत के राजा अब आपके हुक्म के बन्दे हैं। उनको लेकर चाहे जुलूस निकालिये, चाहे दरबार बनाकर सलाम कराइये, उन्हें चाहे विलायत भिजवाइये, चाहे कलकत्ते बुलवाइये, जो चाहे सो कीजिए वह हाजिर हैं। आपके हुक्म की तेज़ी तिब्बत के पहाड़ों की बरफ़ को पिघलाती है, फारिस की खाड़ी का जल सुखाती है, काबुल के पहणों को नर्म करती है। जल, स्थल, वायु और आकाशमंडल में सर्वत्र आपकी विजय है। इस धराधाम में अब अंग्रेज़ी प्रताप के आगे कोई उँगली उठानेवाला नहीं है।···आप जैसे उच्च श्रेणी के विद्वान के जी में यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुत-से काम करने के योग्य नहीं और उनको आपके सजातीय ही कर सकते हैं? आप परीक्षा करके देखिये कि भारत-वासी समुच उन ऊँचे-से-ऊँचे कामों को कर सकते हैं या नहीं, जिनको आप के सजातीय कर सकते हैं। श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, काम में, वक्तृता में, सहिष्णुता में किसी बात से इस देश के निवासी संसार में किसी जाति के आदमियों से पीछे रहनेवाले नहीं हैं! वरंच दो-एक गुण भारतवासियों में ऐसे हैं कि संसार भर में किसी जाति के लोग उनका अनुकरण नहीं कर सकते। हिन्दुस्तानी फ़ारसी पढ़ के ठीक फ़ारिसवालों की भाँति बोल सकते हैं। कविता कर सकते हैं। अंग्रेज़ी बोलने में वह अंग्रेज़ों की पूरी नक़ल कर सकते हैं, कण्ठ तालू को अंग्रेज़ों के सदृश बना सकते हैं। पर एक भी अंग्रेज़ ऐसा नहीं है जो हिन्दुस्तानियों की भाँति साफ़ हिन्दी बोल सकता हो। किसी बात

में हिन्दुस्तानी पीछे रहनेवाले नहीं हैं। हाँ, दो बातों में वह अंग्रेज़ों की नक़ल या बराबरी नहीं कर सकते। एक तो अपने शरीर के काले रंग को अंग्रेज़ों की भाँति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्य को उनके भाग्य में रगड़ कर बराबर नहीं कर सकते।

इस बार बम्बई में उतरकर माई लार्ड आपने जो-जो इरादे ज़ाहिर किये थे ज़रा देखिये तो उनमें से कौन-कौन पूरे हुए। आपने कहा था कि यहाँ से जाते समय भारतवर्ष को ऐसा कर जाऊँगा कि मेरे बाद आने वाले बड़े लाटों को वर्षों तक कुछ करना न पड़ेगा, वह कितने ही वर्षों तक सुख की नींद सोते रहेंगे। किन्तु बात उल्टी हुई। आपको स्वयं इस बार बेचैनी उठानी पड़ी है और इस देश में जैसी अशान्ति आप फैला चले हैं, उसके मिटाने में आपके पद पर आनेवालों को न जाने कब तक नींद और भूख हराम करनी पड़ेगी। इस बार आपने अपना बिस्तर गर्म राख पर रखा है। और भारतवासियों को गर्म तवे पर पानी की बूँदों की भाँति नचाया है। आप स्वयं भी सुखी न हो सके और यहाँ की प्रजा को सुखी न होने दिया, इसका लोगों के चित्त पर बड़ा ही दुख है। विचारिये तो क्या शान आपकी इस देश में थी और अब क्या हो गयी? कितने ऊँचे होकर आप कितने नीचे गिरे। अलिफ़लैला के अलहदीन ने चिराग़ रगड़कर और अबुल हसन ने बग़दाद के खलीफ़ा की गद्दी पर आँख खोलकर वह शान न देखी जो दिल्ली दरबार में आपने देखी।

इसी कलकत्ता में, माई लार्ड की प्रजा में हज़ारों आदमी ऐसे हैं जिनको रहने को सड़ा झोंपड़ा भी नहीं है। गलियों और सड़कों पर घूमते-घूमते जहाँ जगह देखते हैं वहीं पड़ रहते हैं। पहरेवाला आकर डंडा लगाता है तो सरक कर दूसरी जगह जा पड़ते हैं। बीमार होते हैं, तो सड़कों पर पड़े पाँव पीटकर मर जाते हैं। कभी आग जलाकर खुले मैदान में पड़े रहते हैं। कभी-कभी हलवाइयों की भट्ठियों से चिपटकर रात काट देते हैं। नित्य इनकी दो-चार लाशें जहाँ-तहाँ से पड़ी हुई पुलिस उठाती है। भला, माई लार्ड तक उनकी बात कौन पहुँचाये? दिल्ली दरबार में भी जहाँ सारे भारत का वैभव एकत्र था, सैकड़ों ऐसे लोग दिल्ली की सड़कों पर पड़े दिखायी देते थे, परन्तु उनकी ओर देखनेवाला कोई न था। यदि माई लार्ड एक बार इन लोगों को देख पाते तो पूछने को जगह हो जाती कि वह लोग भी ब्रिटिश राज्य के सिटीजन हैं या नहीं? यदि हैं तो कृपापूर्वक पता लगाइए कि उनके रहने के स्थान कहाँ हैं और ब्रिटिश राज्य से उनका क्या नाता है? क्या कह कर वह अपने राजा

और उसके प्रतिनिधि को सम्बोधन करें? किन शब्दों में ब्रिटिश राज्य को असीस दें? क्या यों कहें कि जिस ब्रिटिश राज्य में हम अपनी जन्म-भूमि में एक अंगुल भूमि के अधिकारी नहीं, जिसमें हमारे शरीर को फटे चिथड़े भी नहीं जुड़े और न कभी पापी पेट को पूरा अन्न मिला। उस राज्य की जय हो! उसका राजप्रतिनिधि हाथियों का जुलूस निकालकर सबसे बड़े हाथी पर चँवर-छत्र लगाकर निकले और स्वदेश में जाकर प्रजा के सुखी होने का डंका बजावे?

माई लार्ड···विलायत में आपके बार-बार इस्तीफ़ा देने की धमकी ने प्रकाश कर दिया कि जड़ हिल गयी है। अन्त में वहाँ भी आपको दिवालिया होना पड़ा और धीरता-गंभीरता के साथ दृढ़ता को भी जलांजली देनी पड़ी। इस देश के हाकिम आपकी ताल पर नाचते थे, राजा-महाराजा डोरी हिलाने से सामने हाथ बाँधे हाजिर होते थे। आपके एक इशारे में प्रलय होती थी। कितने ही राजाओं को मिट्टी के खिलौने की भाँति आपने तोड़-फोड़ डाला। कितने ही मिट्टी-काठ के खिलौने आपकी कृपा के जादू से बड़े-बड़े पदाधिकारी बन गये। आपके एक इशारे में देश की शिक्षा पायमाल हो गयी। स्वाधीनता उड़ गयी। बंगदेश के सिर पर आरा रखा गया। ओह! इतने बड़े माई लार्ड का यह दरजा हुआ कि फ़ौजी अफ़सर उनके इच्छित पद पर नियत न हो सका। और उनको उसी ग़ुस्से के मारे इस्तीफ़ा दाखिल करना पड़ा, वह भी मंज़ूर हो गया! उनका रखाया एक आदमी नौकर न रखा गया, उल्टा उन्हीं को निकल जाने का हुक्म मिला।

बहुत काल के पश्चात् भारत सन्तान को होश हुआ कि भारत की मट्टी वन्दना के योग्य है। इसी से वह एक स्वर से 'वन्देमातरम्' कहकर चिल्ला उठे। बंगाल के टुकड़े नहीं हुए, वरंच भारत के अन्यान्य टुकड़े भी बंगदेश से आकर चिपटे जाते हैं।···कैनिंग और रिपन आदि उदारहृदय शासकों ने अपने सुशासन से इस भाव की पुष्टि की थी। इस समय के महाप्रभु ने दिखा दिया कि वह पवित्र घोषणा-पत्र समय पड़े की चाल मात्र था। अंग्रेज़ अपने खयाल के सामने किसी की नहीं सुनते। विशेषकर दुर्बल भारतवासियों की चिल्लाहट का उनके जी में कुछ भी वज़न नहीं है। इससे आठ करोड़ बंगालियों के एक स्वर होकर दिन-रात महीनों रोने-गाने पर भी अंग्रेज़ी सरकार ने कुछ न सुना। बंगाल के दो टुकड़े कर डाले, उसी माई लार्ड के हाथ से दो टुकड़े कराये जिसके कहने से उसने केवल एक मिलिटरी मेम्बर रखना भी मंज़ूर नहीं किया और उसके लिए माई लार्ड को नौकरी से अलग करना भी पसन्द

किया। भारतवासियों के जिम्मे यह बात जम गयी कि अंग्रेज़ों से भक्ति-भाव करना वृथा है। प्रार्थना करना वृथा है और उनके आगे रोना-गाना वृथा है। दुर्बल की यह नहीं सुनते। बंगविच्छेद से हमारे महाप्रभु सरदस्त राजा-प्रजा में यह भाव उत्पन्न करा चले हैं। किन्तु हाय! इस समय इस पर महाप्रभु के देश में कोई ध्यान देनेवाला नहीं है, महाप्रभु तो ध्यान देने के योग्य ही कहाँ?

'कर्ज़नशाही' शीर्षक एक लेख में लिखा था: "अहंकार, आत्म-श्लाघा, ज़िद और गालबजाई में लार्ड कर्ज़न अपने सानी आप निकले। जब से अंग्रेज़ी राज्य आरंभ हुआ है तब से इन गुणों में उनकी बराबरी करनेवाला एक भी बड़ा लाट इस देश में नहीं आया। पिछले बड़े लाटों में लार्ड लिटन के हाथों देश के लोग बहुत तंग हुए। लार्ड कर्ज़न ने लिटन की सब बदनामी धो दी। अपने पहले के सब लाटों को उन्होंने भला कहला दिया···उनकी कार्रवाई का आरंभ बंग-देश से हुआ और बंगदेश ही में उसका अंत हुआ। उनका पहला काम कलकत्ते की म्युनिसिपिल्टी की स्वाधीनता छीनना है और अंतिम बंगदेश के टुकड़े कर डालना। यह अंतिम अनिष्ट श्रीमान ने ऐसे समय में किया जबकि वह इस देश के निवासियों की आँखों में श्रीहत हो चुके थे। अर्थात् अपनी नौकरी चली जाने की खबर पा चुके थे। इसी से लोग चिल्ला उठे थे कि ओह! इस देश से आपको इतना द्वेष है कि चलते-चलते भी एक और चरका दे चले।"

बंगभंग के बाद पूर्वी बंगाल के नये गवर्नर सर बमफ़ाइल्ड फुलर ने शाइस्ता ख़ान के ज़माने की याद कराने के लिए लोगों को धमकी दी थी। गुप्तजी ने जन्नत से शाइस्ता ख़ान के नाम से फुलर के नाम दो ख़त लिखे। कुछ अंश इस प्रकार हैं:

"भाई फुलरजंग! दो सौ-सवा दो सौ साल के बाद तुमने फिर एक बार नवाबी ज़माने को ताज़ा किया है, इसके लिए मैं तुम्हारा शुक्रिया किस ज़ुबान से अदा करूँ। मैंने तो समझा था कि हम लोगों की बदनाम नवाबी हुक़ूमत की दुनिया में फिर कभी इज्ज़त न होगी। उस पर अमल दरामद तो क्या उसका नाम भी अगर कोई लेगा तो गाली देने के लिए। मेरा ही नहीं, मेरे बाद भी जो नवाब हुए उन सब का यही खयाल है। मगर अब देखता हूँ कि ज़माने का इन्कलाब एक बार फिर से हम लोगों के कारनामों को ताज़ा करना चाहता है।"···

देखा जाता है कि तुम्हारे जी में नवाबी की ख़ाहिश है। तुम बंगाल के हिन्दुओं को धमकाते हो कि उनके लिए फिर शाइस्ता ख़ाँ का ज़माना ला दिया

जाएगा। भई वल्लाह! मैंने जब से यह ख़बर अपने दोस्त नवाब अब्दुल लतीफ़ ख़ाँ से सुनी है तब से हँसते-हँसते मेरे पेट में बल पड़-पड़ जाते हैं। अकेला मैं ही नहीं हँसा, बल्कि जितने मुझसे पहले और पीछे के नवाब यहाँ बहिश्त में मौजूद हैं सब एक बार हँसे। यहाँ तक कि हमारी सिका सूरत बादशाह औरंगज़ेब भी जो इस दुनिया में कभी न हँसे थे इस वक़्त अपनी हँसी को रोक न सके। हँसी इस बात की थी कि बेसमझे ही तुमने मेरे ज़माने का नाम लिया है। मालूम होता है कि तुम्हें इल्म तवारीख़ से बहुत कम मस है। अगर तुम्हें मालूम होता कि मेरा ज़माना बंगालियों के बनिस्बत तुम फिरंगियों के लिए ज़्यादा मुसीबत का था तो शायद उसका नाम भी न लेते।···

भाई नवाब फुलर! मैं सच कहता हूँ कि मेरा ज़माना बुलाना तुम कभी पसन्द न करोगे। मुझे ताज्जुब है कि किसी अंग्रेज़ ने तुम्हारे ऐसा कहने पर तुम्हें गँवार नहीं कहा। उस वक़्त तुम लोग क्या थे, ज़रा सुन डालो। तुम कई तरह से फिरंगी इस मुल्क़ में अपने जहाज़ों पर बैठकर आने लगे थे। बंगाल में वलन्देज पुर्तगीज़, फ्रांसीसी और तुम लोगों ने कई मुक़ामों में अपनी कोठियाँ बनायी थीं और तिजारत के बहाने कितनी ही तरह की शरारतें सोचा और किया करते थे। वह फिरंगी चोरियाँ करते थे, डाके डालते थे, गाँव जलाते थे! जब हम लोगों को यह मालूम हुआ कि तुम्हारी नीयत साफ़ नहीं है, तिजारत के बहाने से तुम इस मुल्क पर दखल कर बैठने की फ़िक्र में हो तब तुम लोगों को यहाँ से मार के भगाना पड़ा और सिर्फ़ बंगाल ही नहीं सारे हिन्दुस्तान से निकालने का भी हमारे बादशाह ने बन्दोबस्त किया था। ज़ुल्म से यह सुलूक तुम्हारे साथ नहीं किया गया बल्कि तुम्हारी शरारतों के सबब से। इसके बाद पचास साल तक तुम अपने पाँव से खड़े न हो सके।

···भाई फुलरजंग, कितने ही इल्जाम चाहे मुझ पर हों, एक बार मैंने इस मुल्क की रैयत को ज़रूर खुश किया था। मगर तुमने हुक़ूमत की बाग़ हाथ में लेते ही गुरखों को अपने बहदे पर मुकर्रर किया है। बच्चों के मुँह से 'वन्देमातरम्' सुनकर तुम जामे से बाहर होते हो, इतने पर भी तुम मेरी या किसी दूसरे नवाब की हुक़ूमत से अपनी हुक़ूमत को अच्छा समझते हो। तुम्हें आफरीन है।

···खयाल रखो कि दुनिया चन्द रोज़ा है। आखिर सबको उस दुनिया से काम है, जिसमें हम हैं। सदा कोई रहा न रहेगा। नेकनामी या बदनामी

रह जावेगी। तुम जुल्म से बंगालियों को मत रुलाओ बल्कि ऐसा करो जिससे तुम्हारे लिए तुम्हारे अलग होने के वक़्त बंगाली खुद रोवें।

बरादर फुलरजंग ! तुम्हारी जंग खत्म हो गयी। वह लड़ाई तुम साफ़ हारे। तुमने अपनी शमशीर भी म्यान में कर ली। इससे अब तुम्हारे अलकाब में 'जंग' जोड़ने की ज़रूरत नहीं है। पर जिस तरह तुम्हारी नवाबी छिन जाने पर भी हिन्दुस्तानी सरकार तुम्हें बम्बई में विलायती जहाज़ पर तुम्हारे मामूली नवाबी ठाट चढ़ा देना चाहती है, उसी तरह मैंने मुनासिब समझा कि उस वक़्त तक तुम्हारा अलकाब भी बदस्तूर रहे। इसमें हर्ज़ ही क्या है। सचमुच तुम्हारी हुकूमत का अंजाम बड़ा दर्दनाक हुआ। जिसे तुमने खुद दर्दनाक बताया है। मुझे उसके लिए ताज्जुब नहीं, क्योंकि वह अटल था। पर अफ़सोस है कि इतना जल्द हुआ। मैं जानता था कि ऐसा होगा, उसका इशारा मेरे पहले ख़त में मौजूद है। पर यह ख़याल न करता था कि दस ही महीने में तुम्हारी नक़ली नवाबी तय हो जाएगी···देखो भाई ! जो गुज़र गया है, उसे कोई लौटा नहीं सकता। बहकर दूर निकल गया नदी का पानी क्या कभी फिर लौटा है ? पाँच सौ बरस का या मेरा दो सवा दो सौ साल का ज़माना फिर लौटा लेना तो बहुत बड़ी बात है, तुम अपनी नवाबी के बीते हुए दस महीनों को भी लौटाने की ताक़त नहीं रखते। क्या तुम 1906 ईस्वी को पीछे हटाकर 1606 या 1706 बना सकते हो ? नहीं, भाई इतने वर्ष तो कहाँ, तुम में 20 अगस्त को 19 अगस्त बनाने की ताक़त नहीं है।···तुम्हारी इन हरक़तों पर यहाँ जन्नत में खूब चर्चे होते हैं। पुराने बादशाह और नवाब कहते हैं, भाई ! यह फिरंगी खूब हैं। एशियाई लोगों के ऐब तलाश करने ही को यह अपनी बहादुरी समझते हैं। दिखाने को तो उन ऐबों से नफ़रत करते हैं। पर हक़ीकत देखिये तो उनको चुन-चुनकर काम में लाते हैं। मगर हुनरों से चश्मपोशी करते हैं। तुम लोग हमारे ज़माने के ऐबों को काम में लाने से नहीं हिचकते। मगर उस ज़माने के हुनरों की नक़ल करने की तरफ़ ख़याल नहीं दौड़ाते। क्योंकि वह टेढ़ी खीर है। कहाँ आठ मन के चावल और कहाँ हथियार बाँधने की आज़ादी। आठ मन के चावलों की जगह तुम खुश्कसाली और कहर छोड़कर जाते हो। हथियारों की आज़ादी की जगह दस आदमियों का मिलकर निकलना, मजलिसें करना और 'वन्दे मातरम्' कहना बन्द किये जाते हो। अरे यार, इतना तो सोचा होता कि पिंजरे में भी चिड़िया बोल सकती है, क़ैद में भी ज़बान क़ैद नहीं होती। तुमने ग़ज़ब किया, लोगों का मुँह तक सी दिया था।···

···तुम चले, अब कहने से ही क्या है ? पर जो तुम्हारे जानशीन होते हैं वह सुन रखें कि ज़माने के बहते दरिया को लाठी मार के कोई नहीं रोक सकता। दूसरे को तंग करके कोई खुश रह नहीं सकता। अपने मुल्क़ को जाओ और खुदा तौफ़ीक दे तो हिन्दुस्तान के लोगों को कभी-कभी दुआएँ खैर से याद करना।"

सर सैयद अहमद खान द्वारा 'जन्नत से लिखे' अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के छात्रों के नाम पत्र में :

"मेरे बच्चो, मेरी एक ही कमज़ोरी का यह फल है जिसे तुम भोग रहे हो और जिसके लिए आज मेरी रूह क़ब्र में भी बेक़रार है। मेरी उस कमज़ोरी ने खुदगर्जी और खुशामद का दर्जा हासिल किया। पर सच यह है, मैंने जो कुछ किया, क़ौम की भलाई के लिए किया, अपने फ़ायदे के लिए नहीं। पर वैसा करना बड़ी भारी भूल थी यह मैं क़बूल करता हूँ और उसका इतना खौफ़नाक नतीजा होगा, इसका मुझे ख़्वाब में भी खयाल न था। मैंने यही समझा था कि इस वक़्त मसलहतन यह चाल चल ली जाये, आगे चलकर इसकी इसलाह कर ली जाएगी। मैं यह न समझा था कि यह चाल मेरी क़ौम के रग़ोरेशे में मिल जाएगी और छूटने के बजाए उसकी खू, बू और आदत बन जाएगी।

···पंजाब में कॉलिज के चन्दे के लिए दौरा करने के वक़्त लेक्चर में मैंने कहा था कि हिन्दू-मुसलमानों को मैं एक ही आँख से देखता हूँ। क्या अच्छा होता जो मेरे एक ही आँख होती, जिससे मैं इन दोनों को सदा एक ही आँख से देखा करता। अफ़सोस ! अपनी क़ौम की शकस्ताहाली ने मुझे उस सच्चे रास्ते से हटाया। मैंने 1888 ई. में इंडियन नेशनल कांग्रेस से मुखालिफ़त करके हिन्दू-मुसलमानों को दो आँखों से देखने का खयाल पैदा किया और अपने उन्हीं सच्चे और पुराने खयालात पर पानी फेरा, जिनका दावेदार कांग्रेस से पहले मैं खुद था। खयाल करने से तअज्जुब और अफ़सोस मालूम होता है कि मैंने वह सच्चा और सीधा रास्ता छोड़ा भी तो किसके कहने से कि जो 'असबाबे बग़ावत' लिखने के वक़्त मेरे पिछले खयालात का तरफ़दार था और उसी ने मेरी उस उर्दू किताब का अंग्रेज़ी तर्जुमा कर दिया था। काश ! सर आकलैंड कालविन इन सूबों के लफ्टन्ट गवर्नर न होते और उसी हैसियत में रहते जैसे उस किताब के तर्जुमा करने के वक़्त थे···अगरचे तुम लड़के नहीं हो, जवान हो और माशा अल्लाह तुममें से कितनों के दाढ़ी-मूँछें भी निकल रही हैं। मगर इस कॉलिज में तुम परदे की बूबू की तरह रखे जाते हो, ग़ैर के साये से बचाये जाते हो। तुम्हारे हर काम पर अंग्रेज़ प्रिंसपल

बगैरा वैसा ही पहरा रखते हैं जैसे दाया और मामा छू-छूकर गोद के और उंगली के सहारे के बालकों पर रखती है। पर इतने पर भी तुम निरे गोद के बच्चे नहीं रह सके। बहुत दबने पर तुम्हें जवानों की तरह हिम्मत करनी पड़ी···तुम्हारे गोरे अफ़सर एक गोरे हाकिम की खुशामद को तुमसे अज़ीज़ समझकर एक कान्स्टेबल तुम्हें निसार करते हैं और तुम्हारे सेक्रेटरी ट्रस्टी अपनी वफ़दारी के दामन पर दाग़ नहीं लगने देना चाहते। अगर वह तुम्हारी तरफ़दारी करें, तो अंग्रेज़ अफ़सर उन्हें बागी समझेंगे। तुम्हारी साँप-छछूंदर की-सी हालत हुई।"

'भारत मित्र' के एक लेख में बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा :

"इस बार विलायत के प्रधान पत्र 'टाइम्स' को बड़ी मिरचें लगी हैं। उसने बड़ी गीदड़भबकी दिखायी है। उसकी समझ में हिन्दुस्तानियों को स्वाधीनता या स्वराज्य का नाम ही मुँह से न निकालना चाहिए। वह इस बात से बहुत घबराया है कि भारतवासी भी वैसी ही स्वाधीनता चाहते हैं जैसी अंग्रेज़ी कालोनियों को प्राप्त है। वह डराता है कि भारतवासी ऐसी बात मुँह से न निकालें क्योंकि अंग्रेज़ों ने भारत को तलवार से लिया है और तलवार ही से उसको अपने शासन में रखेंगे। पर हम कहते हैं कि यह सफ़ेद झूठ है कि अंग्रेज़ों ने भारत को तलवार से जीता है—वरंच भारतवासियों की तलवार ने स्वयं यह देश फ़तह करके अंग्रेज़ों के सुपुर्द कर दिया था। 'टाइम्स' क्लाइव के समय की बात याद करें, उसी ने भारत में अंग्रेज़ी राज्य की नींव डाली है। उसकी सेना चन्दा साहब और फ्रांसीसियों से घिर गयी थी और रसद निबड गयी थी तो मालूम है, उसके हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने क्या कहा था। यह कहा था, सुनिये 'साहब ! गोरों को भात खाने को दीजिये, हम लोग माँड पीकर गुज़ारा कर लेंगे'। 'टाइम्स' को जानना चाहिये कि इस देश के वीरों ने तुम्हारे गोरों को चावल देकर और आप उसका माँड पीकर तलवार बजायी है और यह देश तुम्हारे लिए जीत दिया है। इसी प्रकार हिन्दुस्तानियों की मदद से ही अंग्रेज़ों ने इस देश में अपना अधिकार फैलाया है। इस समय देखिए—हिन्दुस्तानी फ़ौज तुम्हारे लिए माल्टा जाती है, मिश्र जाती है, सुमाली लैण्ड जाती है, चीन जाती है और विलायत जाकर तुम्हारी शान-शौक़त बढ़ाती है। तुम्हारे लिए अफरीदियों से लड़ती है, चित्राल जीत देती है। तुम्हारे लिए तिब्बत का रास्ता साफ़ कर देती है और इतने पर भी तुम कहते हो कि यह मुल्क़ तलवार से लिया गया है। कितनी बड़ी लज्जा की बात है ? जिन हिन्दुस्तानियों ने अपना खून पानी की तरह बहा दिया है उनकी बात सुनने से तुम्हें घृणा होती है ? कितनी बड़ी कृतघ्नता है !"

बालमुकुन्द गुप्त अपने लेख के विषय पर काफ़ी अध्ययन करते थे। उनके विचारों का आधार भावुकता नहीं, ठोस तथ्य होते थे। जब जापान ने रूस को हराया तो कुछ लोग कहते सुनायी पड़े कि भारत अपनी स्वतंत्रता के लिए जापान से सहायता ले। गुप्तजी ने लिखा :

"कोई पराधीन जाति अपनी चेष्टा बिना, खाली दूसरे की मदद से कभी स्वाधीन नहीं हो सकती। जापान ब्रिटिश गवर्नमेंट का मित्र है। सो जो लोग भारत का जापान के हाथ में चले जाने का स्वप्न देख रहे हैं, उन्हें निश्चित हो जाना चाहिए। हाँ, जापानियों से भारतवासियों को शिल्प आदि की शिक्षा अपेक्षाकृत सहज में मिल सकती है और शिल्प आदि सीखकर भारतवासी अपनी आर्थिक दशा सुधार सकते हैं, इतना ही कल्याण उनका जापान से हो सकता है।"

1905 में बंगभंग को लेकर देशभर में हलचल हुई। अंग्रेज़ शासकों ने दमन की नीति अपनायी। पूर्वी बंगाल में नये गवर्नर फुलर और पश्चिम बंगाल के गवर्नर ने 'वन्दे मातरम' गीत पर प्रतिबन्ध लगाया, स्कूली बच्चों को पिटवाया गया, उन पर जुर्माना हुआ, उन्हें स्कूलों से निकाला गया, उन्हें जेल भिजवाया गया। जुलूस निकालने पर प्रतिबन्ध लगाये गये, बरिसाल में प्रान्तीय कान्फ्रेंस पर रोक लगी, नेताओं को गिरफ़्तार किया गया और जुलूस पर लाठी चार्ज किया गया। इन सबके बारे में गुप्तजी ने ज़ोरदार सम्पादकीय टिप्पणियों में लिखा :

" 'वन्दे मातरम' कहने के कारण फुलर साहब ने प्रान्त के स्कूलों के बालकों पर जो कुछ अत्याचार कराये, अंग्रेज़ी राज के इतिहास में उसकी कोई नज़ीर नहीं मिलती। लड़कों पर जुर्माना हुआ, वह पिटवाये गये, जेल भिजवाये गये, वज़ीफे बन्द किये। यहाँ तक कि वह स्कूलों से भी निकाले गये, जिन मास्टरों ने उनका पक्ष लिया उनको भी निकलना पड़ा और किसी-किसी को जेल-जुर्माने का भी सामना करना पड़ा। कितने ही स्कूल सरकारी अनुग्रह से वंचित हुए।"

देशभक्तों पर राजद्रोह के मुक़दमे भी चलाये गये। एक पत्र में बालमुकुन्द गुप्त ने दयानारायण निगम को लिखा :

"मुल्क की हालत बहुत तारीक होती जाती है। हमारी क़ौम के लाला जसवन्तराय जेल में हैं और लाला लाजपतराय जलावतन। बेचारे रावलपिंडी के खतरी वकील, बारिस्टर हवालात में। जाट अजीतसिंह पर जलावतनी का वारंट···होश में आओ, जबांदानी और शायरी पर लानत।

क़व्वाली और ढोल का ज़माना अब नहीं है। मर्द बनो, ज़माना से मुल्क की खिदमत करो···"

उधर पंजाब में ऐसी घटनाएँ हो रही थीं जिन पर ज़ोरदार टिप्पणियाँ लिखी गयीं। उन्हीं के शब्दों में :

"एक पुलिस कांस्टेबल वज़ीराबाद में मारा गया था। 'पंजाबी' के मालिक को ख़बर लगी कि वह पुलिस सुपरिंटेंडेंट की गोली से मरा है, क्योंकि वह साहब के कहने से उनके मारे हुए सूअर को नहीं उठाता था। 'पंजाबी' ने यह ख़बर लिखकर सरकार से चाहा था कि इसकी जुडीशल तहक़ीक़ात हो! पर सरकार ने उसकी ज़रूरत नहीं समझी। ज़रूरत समझी इस बात की कि पंजाबी को सज़ा दिलावे। उसने अपनी तरफ़ से नालिश की और 'पंजाबी' पर यह इल्जाम लगाया कि यह अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानियों में विरोध फैलाने के लेख लिखता है। कई महीनों से यह मुक़दमा लाहौर के ज़िला हुजूर की अदालत में चलता था। पत्र के मालिक लाला जशवन्त राय को मजिस्ट्रेट ने दो साल की कड़ी जेल और एक हज़ार रुपये जुर्माने की सज़ा दी है। इससे अधिक सज़ा देने का उनको अधिकार ही न था। क्योंकि जिस धारा से यह मुक़दमा चलाया गया था उसमें इस अपराध के लिए अधिक-से-अधिक इतनी ही सज़ा लिखी है। सम्पादक को छह महीने जेल और दो-सौ रुपये जुर्माने की सज़ा दी। मजिस्ट्रेट को कुछ और भी अधिकार था, वह भी आपने दिखाया। अर्थात् एक ही जंजीर से बँधी हुई हथकड़ी का एक कड़ा मालिक के हाथ में था और दूसरा सम्पादक के हाथ में पहनाया गया। डाका डालनेवालों के लिए भी इस देश की न्यायवान सरकार के पास इस हथकड़ी से बढ़कर और कुछ नहीं है। यह तो मजिस्ट्रेट के अधिकार की बात हुई अब आगे जेल की क़ैफ़ियत सुनिये···पत्र के मालिक लाला यशवन्त राय की आँखें कमज़ोर हैं, चश्मे के बिना उनको दिखाई नहीं देता। जेल में उनके कपड़ों के साथ उनका चश्मा भी उतारा जाने लगा। उन्होंने जेलवालों से प्रार्थना की कि चश्मा उतार लिया जाएगा तो मुझे कुछ भी नहीं दिखायी देगा। इसका उत्तर मिला कि चुप रहो और चश्मा उतार लिया गया।···मालिक और सम्पादक दोनों के कपड़े उतरवा लिये गये और उनको जेल के निहायत सड़े और बदबूदार कपड़े पहना दिये गये। फिर लाला जशवंत राय जेल के एक पुराने क़ैदी के सुपुर्द किये गये। उसने उनको एक चक्की दिखायी और कई सेर मक्की लाकर उनके सामने रखी कि इसे ख़ूब महीन पीसो। अच्छा न पीसोगे तो सुपरिंटेंडेंट तुम्हें सज़ा देगा। ओह! सभ्यता का यह कितना ऊँचा नमूना है। लार्ड मिन्टो और मि. मोर्ली देखें कि भारतवर्ष की जेलों में

उनकी यूनिवर्सिटी की डिग्री पाये हुए एम. ए. से चक्की पिसवायी जाती है। इस विद्वान पुरुष ने किसी को मार नहीं डाला, किसी बादशाह पर बम का गोला नहीं फेंका, किसी का घर नहीं लूटा, कहीं आग नहीं लगायी, वरंच महाराज एडवर्ड की प्रजा में से एक ग़रीब मुसलमान के मारे जाने की ख़बर सरकार तक पहुँचाई थी कि उसके मारने का शक़ लोगों को किस पर है! उसका उसे यह इनाम मिला।···

टेसू और जोगीडा

होली और वसन्त पर 'भारत मित्र' के द्वारा गुप्तजी के हृदय की खुली उमंगें प्रकट होतीं। इन अवसरों पर सहयोगी साहित्यिक, शासक, राजनीतिक नेता, धर्मोपदेष्टा और समाज सुधारक कार्यकर्ताओं में से किसी को माफ़ नहीं किया जाता।

ऐसे अवसरों के लिए लोकगीतों में टेसू और जोगीडा का विशेष महत्त्व है। टेसू लोकगीत शैली हरियाणा के हिसार और रोहतक ज़िलों में, उत्तर प्रदेश के आगरा, मथुरा, अलीगढ़, मेरठ, मुजफ़्फ़र नगर, एटा और इटावा आदि ज़िलों और पूर्वी राजस्थान के भागों में प्रचलित है। वहाँ छोटे-छोटे बच्चे आश्विन महीने में मिट्टी और लकड़ी के पुतलों को घर-घर लेकर जाते हैं वहाँ गीत गाते हैं तथा पैसे और गन्ना माँगते हैं। पुतलों को तथा गीतों को टेसू भी कहा जाता है। इनमें हास्य- और व्यंग्य रहता है। शासकों तथा राजनीतिक नेताओं और उनकी करतूतों के बारे में तथा चमचों के बारे में व्यंग्य और प्रहसन के लिए टेसू का खूब प्रयोग किया। लार्ड कर्ज़न और गवर्नर फुलर को तो आड़े हाथों लिया ही, दिल्ली दरबार का वैभव, भारतीय सैनिकों का अफ्रीका में दुरुपयोग, भारत की निर्धनता, यहाँ के अकाल तथा रोग का व्यंगात्मक शैली में चित्रण किया :

भिड़ गये जंगी मुल्की लाट।
चक्की - से - चक्की का पाट॥
गुत्थम गुत्था धींगा मुश्ती।
खूब हुई दोनों में कुश्ती॥
ऊपर किचनर नीचे कर्जन।
खड़ी तमाशा देखे दर्जन॥
लंदन में तब पड़ी पुकार।
किसकी जीत किसकी हार॥
बादशाह ने हुक्म सुनाया।
सो सुनकर सब के मन भाया॥
सदा विजय जिसने है पाई।
अब भी जीत उसी की भाई॥

कलम करे कितनी ही चरचर।
भाले के वह नहीं बराबर॥
जो जीता सो मजे उड़ावे।
जो हारा सो घर को जावे॥
किचनर जीते कर्जन हारे।
शोर मचा दुनिया में सारे॥

राजनीतिक मामलों पर भी इसी शैली में 'पोलिटिकल होली' लिखी गयी :

टोरी जावें लिबरल आवें, होली है, भई होली है
भारतवासी खैर मनावें, होली है, भई होली है
लिबरल जीते टोरी हारे, हुए मार्ली सचिव हमारे,
भारत में तब बजे नकारे, होली है, भई होली है।

लिबरल दल की हुई बहाली, खुशी हुए तब सब बंगाली
पीटें ढोल बजावें ताली, होली है, भई होली है।
हुए मार्ली पद पर पक्के, बराडरिक को पड़ गये धक्के।
बंगाली समझे पौ छक्के, होली है भई होली है।

बंगभंग की बात चलाई, काटन ने तक़रीर सुनाई
तब मुर्ली ने तान लगाई, होली है, भई होली है।
बंगभंग का हमको गम है, तुम से ज़रा नहीं वह कम है
पर अब उसमें नहिं कुछ दम है, होली है भई होली है।

होना था सो हो गया भइया, अब न मचाओ तौबा दइया
... ...
जैसे मिण्टो जैसे कर्ज़न, होली है, भई होली है।
बराडरिक ने हुक्म चलाया, कर्जन ने दो टूक कराया
मार्ली ने अफ़सोस सुनाया, होली है, भई होली है।

या पंजाब में लायल्टी—

लायल लोगों के घर में डिसलायल्टी का फाका है
पेट बन गये हैं, इन सबके लायल्टी के गुब्बारे
चला नहीं जाता है, थक कर हाँफ रहे हैं बेचारे।
बहुत फूल जाने से डर है फट न पड़े यह इनके पेट
इसी पेट के लिए लगी है लायल्टी की इन्हें चपेट।

सुनते हैं पंजाब देश सीधा सुरपुर को जावेगा
डिस लायल भारत में रहकर इज्जत नहीं गँवावेगा।

जोगीडा लोकगीतों में व्यंग्य रहता है परन्तु इसमें श्रृंगार-रस प्रधान होता है। गुप्तजी ने जोगीडा का प्रयोग धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों, साधुओं और उनके चेलों तथा पाश्चात्य रहन-सहन के समर्थकों की खिल्ली उड़ाने के लिए किया। जैसे बाबाजी वचनम् में :

हाँ सदाशिव गोरख जागे—सदाशिव गोरख जागे
लण्डन जागे पेरिस जागे, अमरीका भी जागे
ऐसा नाद करूँ भारत में सोता उठकर भागे।
मन्तर मारूँ, जन्तर मारूँ, भूत मसान जगाऊँ
सब भारत वालों की अक्किल चुटकी मार उड़ाऊँ।
अक्कड़ तोड़ूँ, कंकड़ तोड़ूँ, तोड़ूँ पत्थर रोड़े
सारे बाबू पकड़ बनाऊँ बिना पूँछ के घोड़े।
सदाशिव गोरख जागे।

अन्तिम चरण

1906 के नवम्बर मास के अन्त में बम्बई के हिन्दी साप्ताहिक 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' के मालिक सेठ खेमराज ने बालमुकुन्द जी को बम्बई बुलाया। इससे कुछ दिन पहले सेठ की तथा सम्पादक पं. जगन्नाथप्रसाद शुक्ल और प्रकाशन विभाग के अमृतलाल चक्रवर्ती के बीच मतभेद उठ खड़े हुए थे। एक पत्र समाचार पत्र में प्रकाशनार्थ आया था। इस पर सेठजी के प्राइवेट सेक्रेटरी ने लिखा 'आज्ञा श्रीमान् छापो।' सम्पादक को यह आदेश खटका। उन्होंने चक्रवर्ती को दिखलाया। वह भी उत्तेजित हो उठे। दोनों ने सलाह की और इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाया तथा इसे सम्पादकीय स्वातंत्र्य पर आघात होने के कारण प्रकाशित नहीं किया। इस बात को लेकर बड़ा तूमार बँधा। सेठजी को भड़काया गया। शुक्ल और चक्रवर्ती भी अड़े रहे। शुक्लजी ने कार्यालय जाना बन्द कर दिया। चक्रवर्ती जी ने वेंकटेश्वर प्रेस से कर्ज ले रखी थी। बग़ैर हिसाब चुकाये वह पद से इस्तीफा देने की स्थिति में नहीं थे। तब एक तरकीब सोची गयी। प्रेस से सखाराम गणेश देउस्कर की बाङ्ला पुस्तक 'देशेर कथा' प्रकाशित की जानी थी। एक अंश का अनुवाद तो माधवप्रसाद मिश्र ने किया था बाक़ी पुस्तक चक्रवर्ती को अनुवाद के के लिए दी गयी।

शुक्ल जी ने स्वयं अनुवाद किया परन्तु चक्रवर्ती जी के नाम से इसे प्रेस को देकर इस तरह उन्हें ऋण-मुक्त करवा दिया। तब चक्रवर्ती जी घर चले गये। उधर सेठजी ने शुक्ल को दोबारा बुलाया और आश्वासन दिया कि सम्पादकीय काम में आगे से दखल नहीं देंगे। मामला निपट तो गया, परन्तु सेठजी ने गाँठ बाँध ली। लिखा-पढ़ी करके उन्होंने गुप्तजी को बम्बई बुलाकर उन्हें 'भारत मित्र' से दुगुने वेतन का लालच दिया। गुप्तजी कई दिन तक बम्बई रहे और सेठजी से बातचीत भी न की। तब गुप्तजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सम्पादक का गौरव और उसकी स्वतंत्रता का मूल्य न तो सेठजी के सलाहकार समझ सकते हैं और न ही सेठजी सीधे रूप में इसे मान सकते हैं। शुक्लजी को उन्होंने कहा, 'गरियार बैल घुमाकर जोता जाता है।' स्वयं अपने 'भारत मित्र' को लौट आये। गुप्तजी को 'भारत मित्र' से विशेष प्यार था। इस पत्र के मालिक ने उन्हें पूरी स्वतंत्रता दे रखी

थी। फिर पत्र की उन्नति भी गुप्तजी की लेखनी और उनके प्रयत्नों के कारण हुई थी। उन्होंने रात-दिन काम कर इस पत्र को आगे बढ़ाया था। अत्यधिक परिश्रम से और कलकत्ते के जलवायु से गुप्तजी का स्वास्थ्य खराब हो गया था। पहले पाचन-शक्ति बिगड़ी, फिर बवासीर हुई। कुछ वैद्यों ने इलाज किया, परन्तु बात नहीं बनी। मित्र दीनदयालु शर्मा ने सलाह दी कि जलवायु बदलने से आराम होगा। गुप्तजी बिहार में बैद्यनाथधाम गये। वहाँ उनकी तबियत नहीं लगी। स्वास्थ्य में सुधार की संभावना भी नहीं थी। इसलिए उन्होंने अपने घर गुडियानी जाने का फ़ैसला किया। दिल्ली पहुँचने पर उनके सम्बन्धियों ने उन्हें इलाज के लिए रोक लिया। हक़ीमों ने प्रयास किया, परन्तु सुधार नहीं हुआ। 18 सितम्बर, 1907 को दोपहर को दीनदयालु शर्मा भी दिल्ली आ पहुँचे। उन्हें देखकर गुप्तजी बहुत प्रसन्न हुए, अपने हाथ शर्माजी के गले में डाले, परन्तु बोल नहीं सके। पाँच बजे वह चल बसे। आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के पिता के निधन से पत्रकार-जगत और साहित्यिकों में शोक और सन्ताप की लहर दौड़ गयी। 'अमृतबाज़ार पत्रिका' ने लिखा :

> 'भारत मित्र' ने जो इस समय हिन्दी समाचारपत्रों में सर्वोदय पद प्राप्त किया है वह गुप्तजी की अविरत परिश्रम का फल है।

स्टेट्समैन ने लिखा :

> गुप्तजी गत बीस वर्षों से पत्र सम्पादन कार्य करते थे। हिन्दी भाषा की उन्नति के सम्बन्ध में उनकी चेष्टाएँ बहुत कुछ सफल हुई हैं।

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा :

> बालमुकुन्द जी हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखकों में थे। उनके न रहने से हिन्दी की बड़ी हानि हुई।

कुछ विद्वानों का मत है कि बालमुकुन्द जी के निधन के बाद प्रयोग में आने-वाली भाषा ने एक नयी दिशा ली। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, माधवप्रसाद मिश्र और बालमुकुन्द गुप्त द्वारा प्रयोग में लानेवाली खड़ी बोली के मार्ग को छोड़कर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में बोली जानेवाली तथा संस्कृत से प्रभावित भाषा की ओर। इस मत से सहमति आवश्यक नहीं है। परन्तु इस बारे में दो मत नहीं हो सकते कि बालमुकुन्द गुप्त ने हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

संदर्भ ग्रंथ सूची

बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित :

1. **शिवशम्भू के चिट्ठे :** (1903 से 1905 तक) कलकत्ता, तीसरा संस्करण, 1925, नवीन संस्करण :
2. **स्फुट कविता :** 'हिन्दी बंगवासी' और 'भारत मित्र' में प्रकाशित (1884 से 1809 तक) कलकत्ता 1907
3. **चिट्ठी और ख़त :** 'भारत मित्र' में प्रकाशित लेख (जून 1901 से मार्च 1907 तक), कलकत्ता, दूसरा संस्करण, 1924
4. **हिन्दी भाषा :** (अमृतलाल चक्रवर्ती द्वारा भूमिका), हिन्दी साहित्य परिषद, कलकत्ता 1908
5. **खिलौना :** ('रसिकलाल दत्त' के उपनाम से) इलाहाबाद, 1899
6. **खेल तमाशा :** ('रसिकलाल दत्त' के उपनाम से) इलाहाबाद 1899
7. **रत्नावली :** (हर्षवर्द्धन द्वारा लिखित नाटक का हिन्दी रूपान्तर) कलकत्ता, दूसरा संस्करण, 1902
8. **मॉडेल भगिनी :** योगेशचन्द्र बसु की बाङ्ला पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर
9. **हरिदास :** रंगलाल मुखोपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तिका का उर्दू-अनुवाद, लाहौर 1889; हिन्दी अनुवाद, कलकत्ता 1895
10. **सर्पाघात चिकित्सा :** बाङ्ला पुस्तक 'सर्पाघात प्रतिकार' का हिन्दी रूपान्तर, कलकत्ता, 1899
11. **जहाँगीरनामा :** मुंशी देवीप्रसाद द्वारा लिखित पुस्तक का सम्पादन,कलकत्ता, 1905
12. **बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली :** संकलनकर्ता झाबरमल शर्मा और बनारसी चतुर्वेदी, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1950। ऊपर दिये गये 1, 2, 3 और 4 के अतिरिक्त इस पुस्तक में सात निबन्ध भाषा और लिपि पर, सत्रह रेखा-चित्र, उर्दू और हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, और दस समालोचनाएँ हैं।

सहयोगी ग्रंथ

1. **बालमुकुन्द स्मारक ग्रंथ :** (सम्पादक) झाबरमल शर्मा और बनारसीदास चतुर्वेदी, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1950
2. **बालमुकुन्द गुप्त : एक मूल्यांकन :** (सम्पादक) कल्याणमल लोढा और विष्णुकांत शास्त्री, कलकत्ता, 1865
3. **गद्यकार बालमुकुन्द गुप्त : जीवन और साहित्य :** नत्थन सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1959

टिप्पणी : गुप्तजी ने सोलह वर्षों तक हिन्दी समाचार-पत्रों में लेख लिखे। 'हिन्दोस्थान', 'हिन्दी बंगवासी' और 'भारत मित्र' की फ़ाइलें दुर्लभ हैं। इसी प्रकार 'ज़माना' में लिखे लेखों को छोड़कर बाईस वर्षों की अवधि में लिखे उर्दू लेख भी दुर्लभ हैं क्योंकि 'अवध-पंच', 'अखबारे-चुनार', 'कोहेनूर', 'उर्दू-ए-मुअल्ला', 'रहबर', 'मखजन', 'मथुरा अख़बार' और 'विक्टोरिया गज़ट' की फ़ाइलें उपलब्ध नहीं हैं।

□□

बालमुकुन्द गुप्त (1865-1907) आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता के जनक माने जाते हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की परंपरा में जिस हिन्दी के मानक स्वरूप का प्रयोग बालमुकुन्द गुप्त और उनके सहयोगियों ने किया, उसी ने आगे चलकर हिन्दी पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उर्दू पत्रकारिता के सर्वप्रथम इतिहासकार बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित हिन्दी समाचार-पत्रों का विस्तृत इतिहास भी पहला प्रयास था। उर्दू तथा फ़ारसी के लेखक और देशभक्त बालमुकुन्द अपने जीवन के आरंभिक चरण में उर्दू के पत्रकार बने, परन्तु यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने *कोहिनूर* के संपादन-काल में हिन्दी के व्यापक प्रचार-प्रसार का प्रयास किया। वे समाचार-पत्रों को भारत की जनता के समग्र साहित्यिक एवं सांस्कृतिक उत्थान का साधन बनाना चाहते थे। *भारत मित्र* के संपादक के रूप में उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी निर्भीकता। धारदार लेखनी, दृढ़ता, ओजस्विता, तर्क-प्रियता और विनोदशीलता के समावेश से उन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को एक नयी दिशा और दृष्टि दी। वे अपने विचारों तथा भावनाओं को सीधी-सरल, चुटिल और विनोदपूर्ण भाषा में इस तरह व्यक्त करते थे कि पाठकगण उनका न केवल आनन्द लेते थे बल्कि उनसे प्रेरणाएँ भी ग्रहण करते थे। उन्होंने लार्ड कर्ज़न जैसे तत्कालीन वाइसरायों के कार्यकलापों को 'शिवशम्भू' उपनाम से 'शिवशम्भू के चिट्ठे' में व्यंग्यात्मक एवं रोचक शैली में इस तरह प्रस्तुत किया कि वे आज एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ माने जाते हैं और व्यंग्य-विनोद तथा हास्य के प्रतिमान हैं।

इस विनिबंध के रचयिता **श्री मदन गोपाल** (जन्म 1919) का साहित्यकारों की जीवनियों के लेखन के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान है। आप पिछले चालीस वर्षों से निरंतर अंग्रेज़ी के माध्यम से हिन्दी तथा उर्दू साहित्यकारों पर लिखने वाले यशस्वी साहित्यकार हैं। आप 'दैनिक ट्रिब्यून' के सम्पादक रह चुके हैं। आपकी अब तक पैंतीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस विनिबंध में आपने बालमुकुन्द गुप्त के महत्त्वपूर्ण योगदान का मूल्यांकन किया है। हिन्दी पत्रकारिता के विकास एवं उत्कर्ष में रुचि रखनेवाले पाठकों के लिए यह विनिबंध विशेष उपयोगी है।

SAHITYA AKADEMI
REVISED PRICE Rs. 15.00

97

बालमुकुन्द गुप्त

मदन गोपाल

भारतीय साहित्य के निर्माता